15

गुरु नानक

गुरु नानक साहेब भारत के महान संतों में एक हैं। आप कबीर साहेब के बाद निर्गुणधारा के संतों में महत्तम हैं। आपका एक विशाल जनमानस पर प्रभाव पड़ा। आपकी वाणियां आज भी जन-जन का कल्याण कर रही हैं।

1. जन्म और प्रवृत्ति

आपका जन्म पंजाब के ''तलवंडी राय भोयं की'' नामक ग्राम में हुआ, जिसे आजकल ''ननकाना साहेब'' कहते हैं। यह आजकल पाकिस्तान में पड़ता है। आपकी जन्मतिथि बैसाख सुदी 3 विक्रमी संवत 1526, ईसा सन् 1469 है।

आपके पिता का नाम श्री कालू तथा माता का नाम तृप्ता था। यह बेदी खत्री परिवार था। आप थोड़ी उम्र में विद्यालय भेजे गये, परन्तु आपका मन पढ़ने में न लगकर आध्यात्मिक चिंतन में लगा रहता था। इसलिए कहा जाता है कि बहुत प्रयत्न करने के बाद भी आपने देशी भाषा तथा फारसी भाषा का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान प्राप्त किया। अंतत: आपने विद्यालय जाना छोड़ दिया और संसार, आत्मा तथा परमात्मा सम्बन्धी बातों के चिंतन में ही लीन रहने लगे।

आप अपने माता-पिता के अकेले पुत्र थे। इकलौता-पुत्र बचपन से ही संसार से उदास रहने लगे तो यह साधारण माता-पिता के लिए अत्यन्त निराशाजनक होता ही है। माता-पिता चाहते थे कि बच्चा पढ़-लिखकर कोई काम-धन्धा में लगे, परन्तु बच्चा नानक की प्रवृत्ति अंतर्मुखी थी। इन बातों को लेकर कुछ विद्वान यह मानते हैं ''नानक साहेब पढ़े-लिखे नहीं थे।'' वे भले बहुत बड़े विद्वान न रहे हों, परन्तु उन्होंने काम-चलाऊ विद्या तो पढ़ी ही थी। परमार्थ-पथ-पथिक संतों के लिए अनुभव का महत्त्व है, विद्या का नहीं, और अनुभव-विद्या उनमें थी ही।

जब बच्चा पढ़ना नहीं चाहा, तब पिता कालू जी ने उन्हें गाय-भैंस चराने का काम दिया। इस काम में भी वे लापरवाही करते थे। साधु-संत मिल जायें तो वे उनके साथ रहकर दिन बिता देते थे। नानक किशोर हो चले थे। पिता ने सोचा कि इन्हें घर से दूर भेजकर इनसे कुछ काम करवाया जाये।

2. नौकरी

गुरु नानक की एक बड़ी बहन थी जिसका नाम नानकी था। उसी के नाम के आधार पर इस बच्चे का नाम नानक पड़ा था। नानकी के पति का नाम जयराम था। वे आज के कपूरथला जिले के सुल्तानपुर नामक जगह के नवाब के दरबार में नौकर थे। गुरु नानक के पिता ने उन्हें उनके जीजा श्री जयराम के पास भेज दिया। उन्होंने नानक की नौकरी नवाब के मोदीखाने में लगवा दी; जहां जनता को चावल, दाल आदि बेचना होता था। इस समय नानक की उम्र करीब पन्द्रह वर्ष की थी।

गुरु नानक अपना काम तत्परता से करते थे, परन्तु उनका संसार से उदासी का स्वरूप बढ़ता जा रहा था। वे रोज प्रात: दूर एक नदी में स्नान करने जाते। वहां घंटों ध्यान, चिंतन, जप आदि करते, संतों में बैठकर उनकी वाणी सुनने तथा उनसे वार्तालाप करने में उनको बड़ा रस आता था। इसी अवस्था में उनको समाधि-लाभ होने लगा और वे कहने लगे कि ''न कोई हिन्दू है न मुसलमान''।

3. विवाह

उनकी सत्संग तथा साधना में रुचि निरंतर बढ़ती गयी। वे अपने कमाये हुए धन को भी ज्यादातर संतों की सेवा में खर्च कर देते थे। इसलिए बहिन नानकी तथा माता-पिता ने मिलकर किशोर नानक की एक लड़की से विवाह कर दिया। परन्तु यह विवाह भी किशोर नानक के मार्ग में बाधा न बन सका। उनकी साधु-सेवा, सत्संग, साधुओं की संगत में लीन रहना और भजन-साधन में तत्पर रहना बढ़ता गया।

इसी समय एक छोटी कही जाने वाली जाति के परिवार से मरदाना नामक युवक आकर नानक से प्रभावित हो उनके साथ रहने लगा। मरदाना रबाब (एक तरह की सारंगी) बजाते थे और गुरु नानक भजन गाते थे।

कुछ दिनों में गुरु नानक के क्रमश: दो बच्चे हुए। एक का नाम श्रीचंद रखा गया तथा दूसरे का लक्ष्मीचंद। श्रीचंद ने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर विरक्ति मार्ग पकड़ा। इन्होंने उदासीन सम्प्रदाय चलाया जिसका भारत में यत्र-तत्र प्रचार है। इस सम्प्रदाय को नानकपंथी भी कहते हैं। दूसरा छोटा लड़का लक्ष्मीचंद गृहस्थी का मार्ग पकड़ा।

4. अधिक उदासीनता

गुरु नानक संसार से अधिक उदासीन रहने लगे। अतएव उन्होंने मोदीखाने की नौकरी छोड़ दी। वे जंगल में चले जाते, साधु-संतों से वार्तालाप करते और साधना में समय बिताते। इन सब बातों को लेकर परिवार तथा रिश्तेदारों में

घबराहट पैदा हुई और सबने उन्हें समझा-बुझाकर घर-गृहस्थी का काम सम्हालने की राय दी, परन्तु उन पर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ा। संतों के सत्संग तथा अपने आत्मचिंतन एवं साधना-अभ्यास के बल से उनके विचार अब तक प्रौढ़ हो चले थे।

5. यात्राएं

गुरु नानक घर-गृहस्थी का सारा भार छोड़कर जगह-जगह घूमने लगे। वे ज्यादातर साधारण जनता में जाते, दीन-दुखियों में जाते और उन्हें भाई-चारे तथा ईश्वर और गुरु की भक्ति का उपदेश देते। वे कहते कि यहां कोई बड़ा-छोटा नहीं है। सबके साथ प्रेम करना सीखो। उन्होंने नीच जाति के कहे जाने वाले लोगों के साथ अपनी अधिक समरसता की। उन्होंने कहा ''नीच जातियों में जो नीच हैं और उनमें जो और भी नीच हैं, नानक सदा उनके साथ है। उसे बड़ों से कुछ लेना-देना नहीं।''[1]

गुरु नानक ने प्रथम यात्रा अमृतसर की की। वे वहां जाकर एक छोटे जलाशय के पास बैठे और वहां उन्होंने कुछ भजन-कीर्तन किया। कहा जाता है कि यहीं पर आज का अमृत सरोवर तथा हर मन्दिर एवं ऐतिहासिक स्वर्ण मंदिर है।

गुरु नानक पर लिखने वालों ने बताया है कि उनका भेष कुछ इस तरह था—''सिर पर नोकीली तुर्की टोपी, भगवा लम्बा चोंगा, सीधी धोती, जो भेष-भूसा उदासी साधुओं से मिलती थी।''[2]

अपनी यात्रा में गुरु नानकदेव सईदपुर गांव में पहुंचे और उन्होंने एक निम्न कही जाने वाली जाति के घर अपना आसन रखा। गांव में बड़े कहलाने वाले लोग भी थे। उनमें सबसे बड़े भागो मलिक थे। उन्होंने नानकदेव को निमंत्रित किया, किन्तु गुरु नानक ने उसका निमंत्रण अस्वीकार कर उस गरीब के घर पर ही भोजन किया जिसके यहां पहले पहुंच चुके थे।

सईदपुर से नानकदेव पुनः जन्म स्थान तलवंडी आये, परन्तु घर पर न आकर गांव के बाहर एक बाग में रुक गये। वहीं वृक्ष के नीचे डेरा डालकर भजन-कीर्तन में लग गये। घर-गांव के लोगों ने जब उनका आगमन जाना, तब वे उन्हें विनय-प्रार्थना करके घर पर ले आये। गांव के लोग इकट्ठे हो गये। गांव का बालक नानक आज एक प्रौढ़ अवस्था में गुरु रूप होकर गांव में पधारा है। उसके तेज से गांव के लोग बहुत प्रभावित हुए। गुरु नानक घर के

---

1. **नीचां अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीच।**
   नानक तिनके संग साथ बडियां सू क्या रीख॥ (गुरु नानकदेव, पृष्ठ 51)
2. **गुरु नानकदेव, पृष्ठ 52-53।**

मोह-माया से परे थे। उन्होंने अपने मन के मान्यताकृत बन्धन तोड़ दिये थे।

कुछ दिनों के बाद वे अपने साथी मरदाना को लेकर पुनः यात्रा में निकल गये। वे तलंबे पहुंचे, जो आजकल पाकिस्तान में सुलतानपुर जिले में पड़ता है। तलंबे में एक ठग था। वह अपना नाम हिन्दुओं को सज्जनमल तथा मुसलमानों को शेख सज्जन बतलाता था। उसने आमने-सामने मंदिर तथा मसजिद बनवा रखे थे। उनमें यात्रियों को ठहरने की जगहें थीं। वह हिन्दू यात्रियों को मंदिर में तथा मुसलमान यात्रियों को मसजिद में टिका देता और रात में उन्हें लूट लेता। गुरु नानक तथा भाई मरदाना को भी उसने व्यापारी समझा और मंदिर में ठहरने की जगह दी। गुरु नानक उसके भेद को जान गये, और उन्होंने उस ठग को उपदेश देकर सच्चा सज्जन बना दिया। उसने लूट-पाट त्यागकर भक्तिमार्ग पकड़ लिया।

गुरु नानकदेव ने मरदाना को साथ लेकर दिल्ली, वाराणसी, पटना आदि की यात्राएं कीं। कहा जाता है कि बनारस में उन्होंने कबीर साहेब के दर्शन किये। कुछ लोगों का अनुमान है कि इसके कई वर्षों के पहले पंजाब के किसी जंगल में एक वृद्ध संत से नानक देव का साक्षात्कार हुआ था, वे कबीर साहेब थे। वहीं से उन्हें प्रेरणा मिली थी।

कबीर साहेब का जीवन-काल विक्रम संवत 1456-1575 है, और नानक साहेब का 1526-1596। इस प्रकार नानक साहेब की उम्र जब 49 वर्ष की थी तब कबीर साहेब का देहांत हुआ है। अतएव दोनों के मिलने में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है।

कबीर साहेब नानक साहेब के सद्गुरु थे, इसका विस्तार से वर्णन कबीर मंसूर के पंद्रहवें अध्याय के पृष्ठ 635 से 638 तथा चौबीसवें अध्याय के पृष्ठ 1350 से 1353 तक है। इसमें देश-विदेश के अनेक इतिहास-वेत्ताओं के उदाहरण दिये गये हैं। इसी का यह परिणाम है कि कबीर साहेब की वाणियों का नानक साहेब की वाणियों पर गहरा प्रभाव है।

कहा जाता है कि नानकदेव ने भारत के अन्य विभिन्न क्षेत्रों में यात्राएं की थीं और भारत के बाहर मक्का भी गये थे। यह कोई संवत 1575 का समय है जिसमें कबीर साहेब ने अपना शरीर छोड़ा है। गुरु नानक जब अन्य हाजियों के साथ मक्का नगर के बाहर पहुंचे और रात में अपना डेरा डाले, तब सोते समय उनके पैर मक्का की तरफ थे। एक मुसलमान ने क्रोधित होकर नानकदेव को डांटा कि तुम कैसे काफिर हो जो ईश्वर की जगह की ओर पैर कर सोते हो। नानकदेव ने कहा कि जिधर ईश्वर की जगह न हो उधर मेरे पैर कर दो। ईश्वर मक्का में नहीं, सबके दिलों में बसता है। कहा जाता है कि वे मक्का से बगदाद भी गये।

गुरु नानक अपनी यात्रा से लौटकर भारत आ गये। परन्तु उनकी यात्राएं भारत में चलती रहीं। वे बहुधा मरदाना को लेकर भ्रमण करते थे। जहां जाते थे, वहां मरदाना रबाब बजाता तथा नानकदेव भजन गाते, कीर्तन करते और आम जनता को धर्मोपदेश करते थे।

जब नानकदेव का शरीर बूढ़ा हो गया, यात्राओं से काफी थक गये, तब वे करतारपुर में आकर विश्राम करने लगे और वहीं भजन-साधन में लीन रहने लगे। इस जगह मरदाना ने अपने भौतिक शरीर का त्याग कर दिया।

गुरु नानक ने इसी करतारपुर गांव में ही जीवन के आखिर तक अपना निवास रखा तथा उन्होंने यहीं अपने मत की गद्दी स्थापित की।

फिरोजपुर जिले के एक अमीर किसान के पुत्र लहपरा जी थे। वे दुर्गा के प्रबल उपासक थे। उन्होंने भाई जोध नामक एक भक्त द्वारा गुरु नानक के महत्त्व को सुनकर उनके दर्शन किये और अंततः उनके चरणों में पूर्ण समर्पित हो गये और दुर्गा की उपासना छोड़कर गुरु-उपासना में लग गये।

6. गद्दीस्थापन और देहत्याग

गुरु नानक ने देखा कि अब शरीर पुराना हो चला है। अपने विचारों के प्रचार के लिए कोई एक उत्तराधिकारी चुनना चाहिए जो गद्दी सम्हाले और उससे भक्त एवं साधु-समाज जुड़कर अपना कल्याण करे। गुरु नानक के बड़े पुत्र श्रीचंद विरक्त होकर धर्मप्रचार कर रहे थे, परन्तु नानकदेव ने उनको गद्दी नहीं दी। उनकी दृष्टि लहपरा जी पर ही पड़ी। उन्होंने एक दिन लहपरा जी को गद्दी पर बैठाकर तथा उनके सामने पांच पैसे और एक नारियल रखकर अपना सिर टेक दिया। इस प्रकार अपने शिष्य को गुरुमर्यादा की गद्दी दे दी और कहा कि अब तुम गुरु अंगद हो गये। अब मैं पंथ-प्रचार का सारा भार तुम्हें सौंपता हूं। गुरु अंगद को आषाढ़ बदी 13, संवत् 1596 तद्नुसार 14 जून, 1539 को गद्दी दी गयी। इसके करीब ढाई महीने के बाद 7 सितम्बर, 1539 ई० को नानकदेव का देहांत हो गया।

7. अंत्येष्टि

कहा जाता है कि जब गुरु नानक के शरीर का अन्त आने लगा, तब उनके हिन्दू तथा मुसलमान भक्तों ने उनके शव का एक दाह करने तथा दूसरे दफनाने के विचार-विमर्श को लेकर आपस में उलझ पड़े। उन्हें गुरुनानक ने समझाया कि तुम लोग झगड़ा मत करो। जब मेरा शरीरांत हो जाये, तब इस शरीर को चादर से ढक देना और हिन्दू तथा मुसलमान मेरे मृत शरीर के दोनों तरफ अपने-अपने फूल रख देंगे। दूसरे दिन जिनके फूल मुरझा जायें वे अपनी हार मान लें और जिनके फूल न मुरझायें वे अपने विधान के अनुसार शरीर की अंत्येष्टि कर लें।

ऐसा ही किया गया। परन्तु दूसरे दिन केवल चद्दर तथा फूल मिले, शरीर गायब था। अतः हिन्दू तथा मुसलमानों ने अपने-अपने फूलों के अपने-अपने अनुसार संस्कार किये।

इस चमत्कारिक घटना की कल्पना कबीर साहेब के मृत शरीर की चमत्कारिक अंत्येष्टि से प्रभावित है। फूल किसी के भी रखे हों, सबके कुम्हलायेंगे और शरीर कहीं उड़कर जा नहीं सकता। कहा जाता है कि गुरु नानक की समाधियां जो हिन्दू और मुसलमानों ने बनायी थीं, उन्हें रावी नदी बहा ले गयी।

8. उनकी शिक्षाएं

गुरु नानक की वाणियों की कुल पद्य संख्या 954 है। उनके हाथों की कोई पांडुलिपि उपलब्ध नहीं है। माना जाता है कि उन्होंने अपनी पांडुलिपि गुरुमुखी लिपि के प्रथम रूप में लिखी होगी जिससे आज की गुरुमुखी काफी बदल गयी है। विद्वानों का मत है कि गुरुमुखी की रचना किसी एक व्यक्ति ने नहीं की है और न किसी समाज ने बैठकर उसका रूप गढ़ा है, किन्तु यह प्रागैतिहासकाल की ब्राह्मीलिपि से बदलकर जनता में धीरे-धीरे आयी है। अतः गुरुमुखी लिपि का श्रेय न गुरुनानक को दिया जा सकता है और न नानकपंथ को।

गुरु नानक का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ जपु जी माना जाता है, जिसमें उनका सम्पूर्ण सिद्धांत है। उनका मुख्य मंत्र है "१ ओंकार सतिनाम करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकालमूरति अजूनि सेभं गुरप्रसादि।" इसका सरल अर्थ है—वह एक और ओंकार स्वरूप है, वह सतनाम वाला तथा सृष्टि रचनेवाला कर्तापुरुष है, वह निर्भय, निर्वैर, कालातीत एवं अविनाशी और स्वयंभू है, और गुरु की कृपा से ही उसे पाया जा सकता है।"

गुरु नानक आत्मा से परे ईश्वर को मानकर उसका जप, ध्यान आदि करने का उपदेश देते थे। परन्तु वे यह भी कहते थे कि बिना आत्मा की पहचान किये भ्रम की काई नहीं मिटती।[1] आत्मा तथा परमात्मा एक ही समझे तभी दुविधा दूर होगी।[2]

नानक साहेब के कुछ आत्मज्ञानपरक वचन और लें—

साधो, यह तन मिथ्या जानो।
या भीतर जो राम बसत है, साचो ताहि पिछानो॥

× × ×

---

1. **कह नानक बिनु आपा चीन्हें, मिटै न भ्रम की काई।**
2. **आतमा परमात्मा एको करै। अंतरि की दुबिधा अंतरि मरै।**

नानक परखो आपको, सो पारख जान।
रोग दारू दोनों बूझै, सो बैद सुजान॥

× × ×

भूल्यो मन माया उरझायो।
जो-जो कर्म कियो लालच लग, तेहि तेहि आप बंधायो॥ 1॥
समझ न परी बिखैरस राच्यो, जस घर को बिसरायो॥ 2॥
संग स्वामी को जान्यो नाहीं, बन खोजन को धायो॥ 3॥
रहत रतन घट ही के भीतर, ताको ज्ञान न पायो॥ 4॥
जन नानक भगवंत भजन बिनु, बिरथा जनम गंवायो॥ 5॥

वे मूर्तिपूजा, अवतारवाद, अंधविश्वासपूर्ण कर्मकांड इन सबका खंडन करते थे। वे मानव-मात्र को एक समझते थे। तात्कालिक हिन्दू-मुसलमानों के विवाद को मिटाने के लिए वे दोनों को फटकारते थे। पंडित और मुल्ला दोनों को पाखंड छोड़कर सत्पथ पर चलने का उपदेश करते थे। वे छुआछूत के खिलाफ थे। देवी-देवता का पाखंड छोड़कर मनुष्य को गुरु तथा संतों का सत्संग करना चाहिए तथा सच्चे पथ का पथिक बनना चाहिए—यह उनका उपदेश था। वे बाह्याडंबर छोड़कर सदाचार पर चलने की राय देते थे।

9. उपसंहार

वे दो संतान पैदा होने तथा नौकरी छोड़ने के बाद विरक्त-जैसे रहते थे। साधु का-सा वेष पहनते थे और स्वयं साधना-भजन करते हुए भारत में घूम-घूमकर उपदेश करते रहे। वे एक महान संत थे, उदार-चिंतक एवं लोकनायक थे। उनका प्रभाव एक व्यापक क्षेत्र पर पड़ा। उनकी वाणियां मानव-समाज के लिए युग-युगांतर तक प्रकाशस्तंभ बनी रहेंगी। उनके बहुत उपदेश एवं विचार संत सम्राट सद्गुरु कबीर जैसे हैं।

16

चैतन्य महाप्रभु

जो विद्या के धनी थे, भक्ति में अत्यन्त भावुक थे और वैराग्य में प्रखर थे; जिन्होंने केवल बंगाल के नदिया जिले में ही भक्ति-वैराग्य की नदी नहीं बहाई, अपितु जिनकी रश्मियां आज विश्व के कोने-कोने में पहुंच रही हैं, उन महाप्रभु गौरांग अर्थात श्री कृष्ण चैतन्य का संक्षिप्त जीवन-चरित यहां मनन करें।

1. समय

भारत के अधिकतम प्रदेशों की तरह बंगाल भी मुसलिम बादशाह के शासन में था। उस समय फारसी राजभाषा थी। बंगाल के अनेक ब्राह्मण भी अपने नाम में खां लगाते थे—रामचंद्र खां, बुद्धिमान खां आदि। सोलहवीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभु का नवद्वीप में जन्म हुआ।

2. जन्म

बंगाल से लगे हुए असम में श्रीहट्ट नाम की जगह से जगन्नाथ मिश्र अपने पिता की आज्ञा से नवद्वीप में आकर पंडित गंगादास जी की पाठशाला में संस्कृत-विद्या का अध्ययन करने लगे। कुछ दिनों के बाद एक पंडित ने जगन्नाथ मिश्र की अपनी 'शची देवी' नाम की लड़की से शादी कर दी। नवद्वीप का मायापुरी एक मुहल्ला था, उसी में पंडित जगन्नाथ मिश्र अपनी पत्नी शची देवी को लेकर रहने लगे।[1]

शची देवी को क्रमश: आठ कन्याएं हुईं और सब मर गयीं। इसके बाद लड़का हुआ जिसका नाम विश्वरूप रखा गया। इसके करीब दस वर्ष बाद एक पुत्र और पैदा हुआ जिसका नाम विश्वम्भर रखा गया। इसी को प्यार से

---

1. **कहा जाता है कि पुराना नवद्वीप करीब पचास किलोमीटर की परिधि में था। जिसमें नव द्वीप थे-अंतद्वीप, सीमंतद्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप, कोलद्वीप, ऋतुद्वीप, अह्नद्वीप, मोदद्रुमद्वीप और रुद्रद्वीप। (प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, चैतन्य चरितावली, 1/64)**
जहां जगन्नाथ मिश्र रहते थे वह मध्यद्वीप था, परन्तु उसका आज कोई पता नहीं है। यह स्थान गंगा की धारा में विलीन हो चुका है। आजकल गंगा के पूर्व अमेरिका के भक्तों ने बहुत बड़ा आश्रम बना रखा है, परन्तु उसके लिए गंगा का खतरा बना हुआ है।

'निमाई' नाम दिया गया जो आगे चलकर गौरांग महाप्रभु या चैतन्य महाप्रभु नाम से प्रसिद्ध हुआ।

निमाई का जन्म विक्रमी संवत 1542 फाल्गुन पूर्णिमा को बताया जाता है।

निमाई रूप से सुन्दर था और स्वभाव से चंचल। उसका बड़ा भाई विश्वरूप गम्भीर था।

3. बड़े भाई विश्वरूप का वैराग्य

निमाई के बड़े भाई विश्वरूप पंडित अद्वैताचार्य की पाठशाला में पढ़ते थे। उनकी उम्र सोलह वर्ष से ऊपर हो रही थी। उनका मन संसार से उदास रहने लगा। उन्होंने गृहत्याग कर संन्यास लेने का मन बना लिया था। उनके एक मित्र ने जिनका नाम लोकनाथ था विश्वरूप से उनका मनोभाव पूछा। दोनों की बात तय हुई और एक रात गंगा नदी तैरकर दोनों निकल गये। उसके बाद दोनों पुन: नवद्वीप में नहीं आये।

पता चलता है कि विश्वरूप के संन्यास का नाम शंकरारण्य पड़ा, और उनके संन्यास लेने के दो वर्ष बाद लोकनाथ ने शंकरारण्य से ही संन्यास-दीक्षा ग्रहण की। कहा जाता है कि शंकरारण्य का शरीर महाराष्ट्र के पंढरपुर-तीर्थ में छूटा था।

4. पिता पं० जगन्नाथ मिश्र को चिंता

पं० जगन्नाथ मिश्र दोनों प्राणी बड़े पुत्र के गृहत्याग से काफी आहत हुए। बच्चा निमाई भी बंधुवियोग में पीड़ित हुआ। जगन्नाथ मिश्र पंडित तो थे, परन्तु मोहरहित नहीं थे। उन्होंने मोह-वश सोचा कि ज्यादा पढ़ना-लिखना ठीक नहीं है। विश्वरूप शास्त्रों को पढ़ते-लिखते घर ही छोड़ दिया। इस निमाई का भी क्या ठिकाना है। यदि इसने भी ज्यादा पढ़ा-लिखा तो यह भी संन्यासी हो सकता है। अत: उन्होंने निमाई की पढ़ाई छुड़ा दी।

5. निमाई का आग्रह और पढ़ाई

निमाई बहुत चंचल लड़का था। जब पढ़ाई छुड़ा दी गयी, तब इसकी चंचलता अधिक बढ़ गयी। माता ने तंग आकर निमाई को डांटा। निमाई ने कहा कि जब मैं पाठशाला नहीं जाऊंगा तो चुपचाप घर में तो नहीं बैठ सकता। इस दशा में खुराफात सूझेगी ही। माता ने निमाई के पिता से कहा कि निमाई की पढ़ाई छुड़ा देना ठीक नहीं है। नवद्वीप में सैकड़ों विद्वान पंडित हैं, उनमें तो किसी ने भी संन्यास नहीं लिया है। वे सब गृहस्थ हैं। यदि निमाई के भाग्य में संन्यास लिखा होगा तो वह भी होगा, पढ़ाई छुड़ाना गलत है। अंतत: जगन्नाथ मिश्र निमाई को पाठशाला भेजने लगे। नवद्वीप के सबसे श्रेष्ठ पंडित गंगादास

जी के पास निमाई व्याकरण का अध्ययन करने लगे। निमाई की ग्यारह वर्ष की उम्र में पिता जगन्नाथ मिश्र का निधन हो गया।

निमाई चंचल, तेज और प्रखर बुद्धि के थे। उन्होंने व्याकरण, अलंकार तथा न्याय का गहरा अध्ययन किया। वे सोलह वर्ष के हो गये थे। वे छात्रों से शास्त्रार्थ और वाद-विवाद भी किया करते थे। वे अपने सभी सहपाठियों में तेज थे। निमाई के सहपाठी पंडित रघुनाथ 'दीधिति' नाम का ग्रंथ न्याय पर लिख रहे थे, जो आगे चलकर भारत-प्रसिद्ध हुआ।

निमाई भी न्याय पर ग्रन्थ लिख रहे थे। पं० रघुनाथ ने उनसे कहा कि आप अपना ग्रंथ मुझे सुनाइये। दोनों नावका में बैठे जा रहे थे। निमाई अपना ग्रंथ सुनाने लगे। जब उन्होंने उसका काफी हिस्सा सुना दिया, तब पंडित रघुनाथ यह समझकर रोने लगे कि मैं तो समझता था कि मेरा 'दीधिति' ग्रन्थ न्याय में अद्वितीय होगा, परन्तु तुम्हारे ग्रंथ के सामने मेरा ग्रंथ कौन पढ़ेगा।

उक्त बात सुनकर निमाई ने कहा, इसमें कौन बड़ी बात है, मैं अपना ग्रंथ पानी में फेंके देता हूं, और उन्होंने अपनी पांडुलिपि गंगा में फेंक दी। पंडित रघुनाथ निमाई के इस त्याग पर स्तंभित रह गये। इसके साथ निमाई ने न्याय पढ़ना तो छोड़ ही दिया, पाठशाला जाना भी छोड़ दिया। इसके बाद वे घर में रखे हुए शास्त्रों का ही अध्ययन करने लगे।

6. अध्यापक रूप में तथा विवाह

निमाई सोलह वर्ष के थे। उन्होंने एक सज्जन के देव-मंदिर में पाठशाला खोल दी और संस्कृत के छात्रों को पढ़ाने लगे। निमाई एक चंचल पंडित थे। अपने छात्रों से हंसी-मजाक करना, गंगा में साथ-साथ नहाते समय एक दूसरे पर पानी उलीचना, वैष्णवों के तिलक तथा उनकी वैष्णवता पर व्यंग्य, मजाक आदि करना, इसी प्रकार अन्य लोगों से छेड़खानी करना निमाई का स्वभाव था। इसी बीच उनका विवाह भी हो गया।

निमाई के छात्र उनसे बहुत प्रेम करते थे, क्योंकि वे अपने छात्रों को मित्रवत मानकर खूब पढ़ाते थे।

निमाई ने इसी बीच अपने कुछ छात्रों के साथ पूर्व बंगाल की यात्रा एवं भ्रमण भी किया। लौटने पर उनको पता चला कि उनकी पत्नी का देहांत हो गया है।

7. दिग्विजयी पर विजय

दिग्विजयी पंडित केशव काश्मीरी नवद्वीप में उन दिनों पहुंचकर शास्त्रार्थ के लिए पंडितों को ललकार रहे थे। एक दिन निमाई गंगा के किनारे अपने पंडित मित्रों के साथ बैठे थे। दिग्विजयी वहां पहुंच गये। निमाई ने नम्रता के

साथ उनके सामने जो कुछ अपने विचार रखे, उनसे दिग्विजयी पंडित लज्जित होकर उनके सामने विनम्र हो गये। दिग्विजयी पंडित को फिर शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में सदा के लिए वैराग्य हो गया।

8. पुनर्विवाह और स्वभाव में बदलाव

माता ने निमाई का दूसरी लड़की से विवाह कर दिया। परन्तु अब उनके स्वभाव में बड़ा परिवर्तन आने लगा। एक दिन जब वे पाठशाला से पढ़ाकर लौटे तो पुस्तकें फेंककर घर में पहुंचे और घर की वस्तुओं को भी तोड़ने-फोड़ने लगे। उनको उन्माद जैसा हो गया। कुछ दिनों के बाद ठीक हो गये।

निमाई अपने कुछ छात्रों के साथ गया तीर्थ गये। लक्ष्य था पिता के नाम से पिंडदान एवं श्राद्ध करना। यहीं पर ईश्वरपुरी नाम के संन्यासी उन्हें मिल गये। उनसे उन्होंने दीक्षा ली। मंत्र मिला 'गोपीजनवल्लभाय नमः'। निमाई कृष्ण-भक्ति में दीवाने हो गये। वे घर लौटकर जब पाठशाला में पढ़ाने बैठे तो छात्रों को व्याकरण, न्याय, अलंकार आदि न पढ़ाकर कृष्ण-भक्ति पढ़ाने लगे। छात्र जब व्याकरण के किसी धातु का रहस्य पूछते, तब निमाई कहते कि कृष्ण ही सभी धातुओं का सार धातु है। छात्र कहते कि गुरु जी, हमें वह पढ़ाइए जिससे हमारा पढ़ना सार्थक हो। निमाई कहते कि कृष्ण-भक्ति ही सार्थक है। पंडित गंगादास जी ने निमाई को समझाया कि तुम छात्रों को व्याकरणादि पढ़ाओ। विद्वान होकर उन्माद की बात मत करो। परन्तु निमाई को कृष्ण-भक्ति का भावोन्माद चढ़ गया था। अंततः उन्होंने संसारी-विद्या पढ़ाना बंद कर दिया।

9. पंडित अद्वैताचार्य तथा हरिदास

नवद्वीप में एक पंडित अद्वैताचार्य थे, जिन्होंने निमाई के बड़े भाई विश्वरूप को पढ़ाया था। अद्वैताचार्य को काली की पूजा में कटते हुए बकरों को देखकर काली से वितृष्णा थी। वे कहते थे कि मां तो अपने बच्चों को प्यार देती है। यह कौन मां है जो अपने बच्चों को खाती है! अद्वैताचार्य अंततः निमाई के वैष्णवी-भक्ति मार्ग के पथिक हो गये थे।

हरिदास एक मुसलिम युवक थे। इनका जन्म बंगाल के 'यशोहर' जिले के 'बुड़न' नाम के ग्राम में हुआ था। कहा जाता है कि इस युवक के माता-पिता इसके बचपन में ही मर गये थे, और ये घरबार छोड़कर निरन्तर भक्ति-भावना में लीन रहने लगे। रामचंद खां नाम के एक जमींदार ने ईर्ष्यावश हरिदास को पतित करने के लिए एक युवती वेश्या को भेजा, परन्तु वह उनके सामने असफल होकर उनका भक्त बन गयी। कहा जाता है वह वेश्या अपनी वेश्यावृत्ति छोड़कर त्यागपूर्वक भक्ति में लग गई और बंगाल में हरिदासी नाम से प्रसिद्ध हुई।

हरिदास अद्वैताचार्य की संगत में आये और अद्वैताचार्य ने ब्राह्मण होने पर भी इस मुसलिम नवयुवक को अपने पास रखकर उसे पूर्ण स्नेह दिया और उनसे छुआछूत का कोई भेद-भाव नहीं रखा। बहुत-से ब्राह्मण इस बात को लेकर अद्वैताचार्य को बुरा कहते थे। परन्तु उसके उत्तर में अद्वैताचार्य कहते थे कि हरिदास पर सैकड़ों ब्राह्मण न्यौछावर करने योग्य हैं।

हरिदास को मुसलमानों ने यह जानकर बहुत सताया कि यह मुसलमान होकर हिन्दुओं के भगवान का नाम-कीर्तन करता है। परन्तु हरिदास की दृढ़ता से सब शांत हो गये।

हरिदास को अद्वैताचार्य का परम शंबल मिला ही था, जब निमाई का कीर्तन अभियान चला तो वे इनमें आकर मिल गये और उनके चरणों में समर्पित हो गये और जीवनभर उनके साथ बने रहे। जगन्नाथपुरी में चैतन्य देव के सामने ही हरिदासजी का शरीरांत हुआ।

10. जगाई और मधाई

जगाई और मधाई नाम के दो ब्राह्मण-बंधु थे। दोनों राजा के कोतवाल थे और क्रूर तथा अत्याचारी थे। इन दोनों ने निमाई के कीर्तन अभियान को धक्का देने का प्रयास किया। परन्तु ये निमाई तथा उनके भक्तों के प्रभाव से क्रूरता छोड़कर भक्त हो गये।

11. संन्यास

निमाई के मन में गृहत्याग की भावना प्रबल हो गयी। घर में केवल बूढ़ी माता तथा सुकुमारी नवयुवती पत्नी थी। परन्तु जिसके चित्त में वैराग्य की तीव्र अग्नि प्रदीप्त हो जाती है वह बुझ नहीं सकती। किसी युवक के गृहत्याग से माता-पिता तथा आश्रयीजनों को मोहवश तत्काल अवश्य कष्ट होता है, परन्तु कुछ ही दिनों में वह कष्ट सुख के रूप में बदल जाता है। किसी के बिना किसी का निर्वाह नहीं रुकता। हर प्राणी अपने-अपने प्रारब्ध से खाता-जीता तथा मरता है। अखंड वैराग्य उदय होने पर उसे कोई मोह बांध नहीं सकता, क्योंकि उसके मन में मोह रह ही नहीं जाता। बड़ा काम करने के लिए संकुचित दायरा को छोड़ना ही पड़ता है। संत कुसुमादपि कोमल तथा वज्रादपि कठोर होते हैं अर्थात वे स्वभाव से कोमल होते हैं, परन्तु मोह के प्रति कठोर होते हैं।

निमाई पंडित अपनी चौबीस वर्ष की उम्र में एक रात अपने माने हुए गृह का त्याग कर दिये और उसी गंगा के घाट पर जाकर नदी तैरकर पार गये जिस पर करीब बीस वर्ष पूर्व उनके बड़े भाई विश्वरूप गये थे। 'कटवा' नाम

के एक ग्राम में 'केशव-भारती' नाम के एक संन्यासी निवास करते थे। निमाई ने इन्हीं से संन्यास-दीक्षा ली। संन्यास का नाम पड़ा श्रीकृष्ण चैतन्य। जिन्हें 'चैतन्य' नाम से जगत जानता है। इन्हें चैतन्य महाप्रभु भी कहा जाने लगा।

12. भ्रमण, रूप और सनातन

चैतन्यदेव संन्यास के बाद जगन्नाथधाम गये और भक्तों के साथ वर्षों वहां रह गये। उसके बाद नवद्वीप लौट आये। इसी बीच इन्हें दो ब्राह्मण-बंधु मिले, जो संस्कृत, फारसी तथा अरबी के विद्वान थे। बंगाल के तत्काल मुसलिम बादशाह ने इन दोनों के नाम 'दबिरखास' तथा 'शाकिर मल्लिक' रखे थे। ये ब्राह्मण-बंधु धनी तथा विलासी थे। इन्हें मुसलमानों की संगत से परहेज नहीं था। ये बंगाल के बादशाह के मंत्री थे।

उक्त दोनों ब्राह्मण-बंधुओं का हृदय-परिवर्तन हुआ और वे चैतन्यदेव के शिष्य हो गये। चैतन्यदेव ने इनके नाम 'रूप' और 'सनातन' रखे। सनातन तो इतने महा विरक्त हुए कि अपना राजशाही भोग छोड़कर वृन्दावन के वनों में बीसों वर्ष बिताये। वे एक पेड़ के नीचे भी सदैव नहीं रहते थे। भिक्षा मांगकर भोजन कर लेते, राह-बाट में पड़ी चीथियों की गुदड़ी बनाकर ओढ़ते तथा मिट्टी के करवा में पानी पीते। रूप भी वैराग्यवान हुए।

चैतन्यदेव ने वाराणसी, प्रयाग, वृन्दावन आदि की यात्राएं कीं। प्रयाग में चैतन्यदेव ने मुसलिम पठानों को भी अपना सदुपदेश तथा प्रेम प्रदान किया। चैतन्य जाति-पांति और छुआछूत नहीं मानते थे।

13. वल्लभाचार्य से मिलन

चैतन्यदेव[1] तथा वल्लभाचार्य[2] दोनों का समय एक ही बताया जाता है। श्रीलक्ष्मण भट्ट नाम के एक ब्राह्मण थे जो आंध्रप्रदेश में व्योमस्थंभ-पर्वत के पास कृष्ण नदी तट पर बसे हुए काकरवाड़ नामक नगर के निवासी थे। वे तीर्थ-यात्रा में काशी आ रहे थे। आजकल के छत्तीसगढ़ रायपुर जिले के चंपारन[3] गांव के पास आते-आते उनकी पत्नी को प्रसव-वेदना हुई और वहीं एक बच्चा पैदा हुआ जिसे हम वल्लभाचार्य के नाम से जानते हैं। भट्ट जी वहां कुछ दिन रुककर काशी आ गये। वल्लभाचार्य का जन्म वैशाख कृष्ण एकादशी विक्रमी संवत 1535 को माना जाता है।

---

1. **चैतन्यदेव (विक्रमी 1542-1590)। कुल आयु 48 वर्ष।**
2. **वल्लभाचार्य (विक्रमी 1535-1587)। कुल आयु 52 वर्ष।**

(प्रभुदत्त ब्रह्मचारी : चैतन्यचरितवाली)

3. **चंपारन में आज भी वल्लभाचार्य का मंदिर बना है और यात्रियों के लिए धर्मशालाएं भी बनी हैं। यह स्थान राजिम से उत्तर थोड़ी दूर पर पड़ता है।**

वल्लभाचार्य विद्याभ्यास के बाद देश-भ्रमण करने लगे और कृष्ण-भक्ति का उपदेश करने लगे। वल्लभाचार्य ने अपना विवाह किया। इनके दो पुत्र हुए गोस्वामी गोपीनाथ तथा गोस्वामी बिट्ठलनाथ। इन्हीं की वंश-परम्परा में वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्गी कृष्ण-भक्ति का सम्प्रदाय चला। वल्लभाचार्य ज्यादातर गोकुल, अरैल (प्रयाग), चुनार तथा काशी में रहते थे। आपने अरैल में रहकर कई ग्रंथों की रचना की। यहीं पर चैतन्यदेव से आपकी भेंट हुई जब वे प्रयाग में आये थे। कहा जाता है आप दोनों की दो बार भेंट हुई थी। दोनों कृष्ण-भक्त थे। दोनों अपने-अपने ढंग के साधक एवं प्रचारक थे।

वल्लभाचार्य को आगरा के पास गौघाट पर प्रसिद्ध सूरदास जी से भेंट हुई। फिर तो सूरदास वल्लभाचार्य की शरण में हो गये। अंततः वल्लभाचार्य जी काशी में संन्यास धारणकर विरक्त हो गये।

14. छोटे हरिदास को दण्ड

एक तो प्रसिद्ध हरिदास थे जिनकी चर्चा पीछे आयी है। वे मुसलिम परिवार में जन्मे थे। वे तो एक महान संत थे। इनसे हटकर चैतन्यदेव के साथ एक दूसरे हरिदास थे जो उम्र में छोटे थे और ये भी विरक्त थे। जगन्नाथ धाम में उस समय चैतन्यदेव रह रहे थे। छोटे हरिदास ने एक बार स्त्री से संभाषण कर लिया था। निश्चित ही इनमें स्त्री-आसक्ति की दुर्बलता रही होगी और चैतन्यदेव पहले से जानते रहे होंगे। जब उन्होंने सुना कि छोटे हरिदास ने एक स्त्री से संभाषण किया है तो उन्होंने उन्हें सदैव के लिए त्याग दिया। सभी संत-भक्तों ने बड़ा प्रयत्न किया और छोटे हरिदास भी अन्न-जल छोड़कर तीन दिन पड़े रहे कि गुरुदेव मुझे क्षमाकर शरण में लें, परन्तु चैतन्यदेव ने क्षमा नहीं की। सबको महान आश्चर्य हुआ। चैतन्यदेव ने संतों से कहा—"मैं हृदय के मर्म को बताता हूं जिसकी मुनियों ने प्रशंसा की है—विरक्तों को स्त्रियों की संगति नहीं करना चाहिए तथा उनके पास नहीं रहना चाहिए, नहीं रहना चाहिए। क्योंकि ये मृगनयनी स्त्रियां शांति-कवच से ढके हुए बड़े-बड़े सत्पुरुषों के चित्त को भी शीघ्र खींच लेती हैं।"[1]

चैतन्यदेव ने छोटे हरिदास को पुनः अपने साथ नहीं लिया। छोटे हरिदास परोक्ष रूप में चैतन्यदेव की पद-धूलि ले लिया करते थे, परन्तु वे उपेक्षित ही बने रहे। अन्त में उन्होंने प्रयाग में आकर त्रिवेणी की धारा में कूदकर अपना शरीर त्याग दिया।

---

1. **शृणु हृदयरहस्यं यत्प्रशस्तं मुनीनां न खलु न खलु योषित्सन्निधिः संनिधेयः।**
हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिक्षुरप्रैः पिहितशमतनुत्रं चित्तमप्युत्तमानाम्॥
(सु० र० भां० 365/72/ चैतन्यचरितावली 5/27)

मनुष्य ने चाहे जितना बड़ा अपराध किया हो, यदि वह अपने अपराध को स्वीकार कर विनम्रतापूर्वक पुन: शरण में आता है और अपने आप को पूर्ण सुधारने की प्रतिज्ञा करता है तो उसे अवसर देना चाहिए। चैतन्यदेव ने इतनी कठोरता क्यों बरती, हम इस पर टिप्पणी नहीं कर सकते, क्योंकि उस स्थिति का पता हमें नहीं है।

छोटे हरिदास के प्रयाग-संगम में डूबकर मरने के बाद चैतन्यदेव से जगन्नाथधाम में किसी भक्त ने पूछा था—प्रभो! छोटा हरिदास कहां है?

चैतन्यदेव ने हंसकर कहा था—कहीं अपना कर्म-फल भोग रहा होगा।

15. निंदक के प्रति क्षमाभाव

चैतन्यदेव के प्रथम दीक्षा गुरु ईश्वरपुरी के एक गुरुभाई रामचंद्रपुरी थे। वे चैतन्यदेव की महिमा सुनकर जगन्नाथपुरी में उनके पास आ गये थे। उस समय चैतन्यदेव जगन्नाथपुरी में ही रहते थे। रामचंद्रपुरी भिक्षा करके भोजन कर लेते थे और जहां-तहां वृक्षों के नीचे रह लेते थे। चैतन्यदेव उनको गुरुवत मानकर उन्हें आदर देते थे। उनके समीप आने पर चैतन्यदेव उठकर खड़े हो जाते थे और उन्हें आसन देते थे।

रामचंद्रपुरी को अपनी तितिक्षा का बड़ा घमंड था और चैतन्यदेव की प्रतिष्ठा के प्रति बड़ी ईर्ष्या थी। वे चैतन्यदेव तथा उनके संत-भक्तों की निंदा में ही सदैव लगे रहते थे। वे चैतन्यदेव के सामने ही एक दिन आकर उन्हें खरी-खोटी सुना गये और उनके खान-पान आदि पर टिप्पणी कर गये।

उस दिन से चैतन्यदेव ने अपना भोजन बहुत कम कर दिया। सभी संत-भक्तों को पता चला। सब रामचंद्रपुरी को कोसने लगे तथा चैतन्यदेव से और अधिक खाने का आग्रह करने लगे। कुछ दिनों के बाद जब राचंद्रपुरी ने भी सुना कि चैतन्यदेव बहुत कम खाने से दुबले होते जा रहे हैं, तब वे पुन: उन्हें डांट-फटकार गये कि तुम बहुत कम खाते हो, यह ठीक नहीं है। मैंने संतुलित खाने के लिए कहा था।

रामचंद्रपुरी अपने आप को बहुत त्यागी मानते थे। चैतन्यदेव तो त्यागी थे ही, परन्तु एक प्रतिभावान पुरुष होने से उनके पास लोगों की भीड़ आती थी और भीड़ के साथ वस्तुएं, खानपान की चीजें आदि भी आती थीं। रामचंद्रपुरी यह सब देखकर जलते थे। वे सोचते थे कि संसार के लोग मूर्ख हैं। वे संत-असंत की परख नहीं कर पाते। मैं त्यागी हूं और लोग मुझे नहीं समझते, और चैतन्यदेव तो राग-ठाट वाले संन्यासी हैं और उनके पास लोग भीड़ लगाये रहते हैं।

रामचंद्रपुरी की कटु आलोचना तथा ईर्ष्या-डाह की प्रवृत्ति से चैतन्यदेव का समाज आजिज आ गया और वह सोचने लगा कि रामचंद्रपुरी जगन्नाथ पुरी से

चले जायें तो अच्छा है। अंततः रामचंद्रपुरी स्वयं ही वहां से कहीं चले गये। परंतु इन सब स्थितियों में भी जब तक रामचंद्रपुरी वहां रहे, चैतन्यदेव उनको गुरुवत मानकर उन्हें आदर देते रहे और उनकी आलोचनावृत्ति से अपने जीवन-सुधार में सत्प्रेरणा ही लेते रहे।

16. भाव-विह्वलता

चैतन्यदेव प्रकृति से बहुत भावुक थे। उनको मधुर-रस लेकर कृष्ण-भक्ति की प्रेरणा मिली, तो और भावुक हो गये। वे अपने कमरे में पड़े-पड़े कृष्ण-कृष्ण पुकारते थे। कभी-कभी अपने सिर को दीवार तथा पत्थर में मार-मार कर सिर और मुख को रक्त-रंजित कर लेते थे। यह सब करते थे कृष्ण-विरह-व्यथा में। जगन्नाथपुरी में रहते-रहते कभी-कभी समुद्र में इसलिए कूद पड़ते थे कि यह यमुना-नदी है और इसमें भगवान कृष्ण गोपियों को लेकर जल-विहार कर रहे हैं, तो वे उसमें स्वयं भी सम्मिलित होना चाहते थे। वे श्रीकृष्ण के दर्शन करने के लिए हरदम दीवाने बने रहते थे।

इनकी मुख्य आराधना यही थी साथी संत-भक्तों को लेकर कीर्तन करना, उसमें उन्मत्त होकर नाचना, विह्वल होकर गिर पड़ना तथा दूसरे समय भागवत आदि पुराणों से कृष्ण-कथा कहना-सुनना।

चैतन्यदेव के दादागुरु थे माधवेंद्रपुरी। वे स्वयं भावुक थे, कृष्ण-दर्शन के लिए उन्मत्त थे। जब उनका शरीर छूटने लगा, तब वे कृष्ण-दर्शन के लिए छटपटाने लगे और कहने लगे "हे मनमोहन कृष्ण! जीवन बीत गया आपको पुकारते-पुकारते, परन्तु आपने मुझ अधम को दर्शन नहीं दिये। मथुरा आकर भी आपके दर्शन नहीं पाया। मेरी क्या गति होगी नाथ!"

यह दशा देखकर उनके एक शिष्य ने कहा था—"गुरुदेव! आपका हृदय ही मथुरा है, और उसमें आप स्वयं ब्रह्म हैं। आप स्वयं को ब्रह्म अनुभव कीजिए। आप बाहर से श्रीकृष्ण को पाने के लिए क्यों प्रलाप करते हैं, इस मोहयुक्त भावना में क्यों पड़े हैं।"

बाहर से भगवान पाने की और उसमें देहधारी भगवान पाने की इच्छा रखने वाले भक्तों की यही दशा होती है।

चैतन्यदेव निर्मल चित्त के संत थे, भावुक होने से सदैव स्वप्नलोक में ही विचरते रहते थे।

17. अन्तिम यात्रा

महाप्रभु गौरांग श्रीकृष्ण चैतन्य ने सोलह वर्ष की उम्र तक पढ़ाई की। इसके बाद अन्य छात्रों को पढ़ाने लगे। चौबीस वर्ष की उम्र में संन्यास लिया। चौबीस से तीस वर्ष की उम्र तक वे भारत के विविध तीर्थों में भ्रमण करते

रहे। इसके बाद वृंदावन की यात्रा की। वृंदावन से लौटकर तीस से अड़तालीस वर्ष की उम्र तक अठारह वर्ष जगन्नाथ धाम में रहे।

जगन्नाथपुरी में पंडित काशी मिश्र थे, जो उड़ीसा-नरेश के कुलगुरु थे। उनका एक बड़ा भारी मकान था जिसमें तीन परकोटे थे और सैकड़ों लोग उसमें रह सकते थे। चैतन्यदेव इसी भवन में अंत तक रहे। उनके भक्त भी इसी में आकर रहते थे।

चैतन्यदेव के शिष्यों ने, भावुकभक्त होने से, उनके दारुण-दृश्य मृत्यु की चर्चा नहीं की। उनके अनेक साक्षात शिष्यों ने उनके जीवनचरित्र लिखे, परंतु प्राय: उनकी मृत्यु पर परदा डाल दिया। बताया गया कि चैतन्य देव जगन्नाथ मंदिर की मूर्ति में समा गये, इसलिए उनका शरीर नहीं मिला। कहा जाता है कि विक्रमी संवत् 1590 के आषाढ़ महीने में चैतन्यदेव ने अपना शरीर छोड़ा। इस समय उनकी उम्र अड़तालीस वर्ष की थी।

18. छह गोस्वामी

महाप्रभु चैतन्यदेव के छह अनुगामी गोस्वामी बहुत प्रसिद्ध हैं—श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट तथा गोपाल भट्ट। ये सब वृंदावन में ही जीवन बिताये।

रूप और सनातन बंगाल के राजमंत्रित्व तथा बड़े ऐश्वर्य छोड़कर विरक्त हुए थे। चैतन्यदेव ने तो किसी ग्रंथ की रचना नहीं की। रूप तथा सनातन ने ही इनके सिद्धान्तों के आधार ग्रंथ बनाये। जन्म से सनातन बड़े थे, परन्तु रूप अधिक तेजवान थे। रूप गोस्वामी की सोलह रचनाएं तथा सनातन गोस्वामी की चार हैं।

संसार के महापुरुषों के विचारों तथा मतों में अन्तर होता है, परंतु सभी संतों का एक ही उद्देश्य होता है—अपने मन की दावाग्नि को पूर्णतया बुझा देना तथा संसार के मनुष्यों के मन की दावाग्नि बुझाने के लिए ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि के शीतल-जल की वर्षा करना।

चैतन्यदेव की जलायी हुई ज्योति से असंख्य लोगों ने आज तक लाभ लिया है। इस बीसवीं शताब्दी में उसी ज्योति के सहारे प्रभुपाद जी ने संसार के अनेक देशों में वहां के मूल निवासियों को सदाचार का पाठ पढ़ाकर उन्हें सच्चा मनुष्य बनने के लिए प्रेरित किया। इनका मिशन आज ''हरे राम हरे कृष्ण'' के नाम से जगत में प्रसिद्ध है।

17

राजा राममोहन राय

अंधरूढ़ियों के निर्भीक विरोधी, मानव एकता के पक्षधर, अपने खुले विचारों से योरोप को प्रभावित करने वाले प्रथम भारतीय, सती-प्रथा के नाम से विधवा-देह-दाह होने वाले पाप को कानून द्वारा बंद कराने वाले और कभी भी असत्य के सामने न झुकने वाले राजा राममोहन राय का यहां सरल परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है।

1. जन्मभूमि और जन्मकाल

बंगाल में 'राधानगर' नाम का एक गांव है जो पहले बर्दमान जिले में पड़ता था। बाद में इसे हुगली जिले के उपविभाग आरामबाग में सम्मिलित कर लिया गया। इसी 'राधानगर' गांव में राजा राममोहन राय का 22 मई 1772 ई० को जन्म हुआ। राममोहन के पिता का नाम पंडित रमाकांत राय था और माता का नाम फूल ठकुरानी। पिता रमाकांत राय कट्टर रूढ़िवादी ब्राह्मण थे और माता बुद्धिमती तथा दृढ़ संकल्पशक्ति संपन्न महिला।

2. शिक्षा गांव तथा पटना में

फूल ठकुरानी के तीन बच्चे पैदा हुए—राममोहन और जगमोहन दो पुत्र तथा एक पुत्री। राममोहन की प्राथमिक शिक्षा गांव के स्कूल में एक मौलवी द्वारा फारसी के माध्यम से हुई। इसके बाद पंडित रमांकात ने पुत्र राममोहन को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए पटना भेज दिया। उस समय पटना इसलामी शिक्षा का केंद्र था। राममोहन ने पटना में अरबी और फारसी का अध्ययन किया। उन्हें कुरान और इसलामी धर्मशास्त्र से परिचय हुआ। उन्हें कुरान के गणतांत्रिक उपदेश तथा अरबी चिंतन के तर्कों ने प्रभावित किया। उन्होंने विवेक का सहारा लिया। उन्हें सत्य के शोधन के लिए वाद-विवाद करना पसंद आया। ज्यादातर मुताजिलों और सूफियों के दर्शन से वे प्रभावित हुए जो बसरा नामक जगह में आठवीं शताब्दी में वाज़िल बी० आटा तथा उमर बी० उबेद से प्रवर्तित हुए थे।

3. क्रांति और निष्कासन

राममोहन राय पटना से अपने गांव-घर आये। उन्होंने हिन्दू समाज में फैले हुए अंधविश्वासों एवं मूर्तिपूजा के विरोध में लेख लिखना शुरू किया। रूढ़िवादी पिता पंडित रमाकांत को पुत्र द्वारा इस ढंग का प्रचार अच्छा न लगा

और उन्होंने पुत्र राममोहन को कड़ी आज्ञा दी कि वे घर से निकल जायें। राममोहन अपने तार्किक सिद्धान्तों में दृढ़ रहे और वे घर त्यागकर यत्र-तत्र भटकने लगे। इसी क्रम में उन्होंने तिब्बत की यात्रा की। तिब्बत में बौद्ध संप्रदाय के लोग अधिक हैं और वहां मूर्तिपूजा का बोलबाला है। राममोहन ने वहां भी मूर्तिपूजा का खंडन किया, इसलिए वहां के बौद्ध लामा लोग उनके शत्रु बन गये। ''उम्र के इसी दौरान के इसी दौर के बारे में उन्होंने अपने 'आटो बायोग्राफिकल स्केच' में लिखा है—''जब मैं सोलह वर्ष का था, हिन्दू समाज में प्रचलित मूर्तिपूजा के औचित्य की ओर इशारा करते हुए मैंने एक पांडुलिपि तैयार की। इस पांडुलिपि और इस विषय की मेरी निजी भावनाओं ने मेरे और मेरे निकट संबंधियों के बीच एक दरार पैदा कर दी। मेरी यात्रा बरकरार रही। कुछ दूसरे देशों में भी गया, लेकिन ज्यादातर भारत की सीमा में ही घूमा।''[1]

4. अध्ययन और अभिव्यक्ति

राममोहन कुछ वर्ष इधर-उधर भटकते रहे। उसके बाद वे वाराणसी गये। वहां पर उन्होंने कई वर्ष रहकर हिन्दू-दर्शन का गहरा अध्ययन किया। 1803 ई० में राममोहन के पिता पंडित रमाकांत का देहांत हो गया। इसके कुछ दिनों के बाद राममोहन मुर्शिदाबाद चले गये जो बंगाल की एक प्रसिद्ध जगह है। यहां रहकर उन्होंने एक निबंध लिखा जिसका नाम था 'तुहफ़ात-उल-मुवाहिदीन'। इसका अर्थ होता है 'एकेश्वरवादियों को उपहार'। यह निबंध फारसी भाषा में लिखा गया था और इसकी भूमिका अरबी भाषा में थी।

''राममोहन राय ने अलौकिक शक्ति और चमत्कार के सिद्धान्त को नकार दिया। उन्होंने लिखा.....आमतौर पर साधारण आदमी एक सनक में काम करता है। अपनी ग्रहणशक्ति से परे जब वह कुछ देखता, सुनता या पाता है, जब उसका कोई कारण उसकी समझ में नहीं आता तब वह अलौकिक शक्ति या चमत्कार की बात करता है। दुनिया में सब कुछ कारण-कार्य के क्रमिक संबंधों में बंधा हुआ है। सारा रहस्य यही है, हर चीज एक कारण और स्थिति पर आधारित है। अगर हम अदना-सी एक चीज को भी लें तो पायेंगे कि प्रकृति की हर चीज पूरे ब्रह्माण्ड से जुड़ी है। लेकिन अनुभव की तलाश और सनक की धुन में कारण छिप जाता है। दूसरा आदमी इस अवसर का फायदा उठाकर अपनी अलौकिक शक्ति दूसरे पर आरोपित करता है। लोग उसकी बातों में आ जाते हैं और वह लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो जाता है।''[2]

---

1. **राजाराममोहन राय, पृष्ठ 10, लेखक सौम्येंद्रनाथ टैगोर, साहित्य अकादमी, दिल्ली।**
2. **राजा राममोहन राय, पृष्ठ 11-12।**

इस प्रकार राममाहेन राय ने चमत्कारों को अस्वीकार कर दिया। वे कहते थे कि विश्व के नियमों का उल्लंघन करने की शक्ति ईश्वर में भी नहीं है और सर्जक भी असंभव वस्तु का सृजन नहीं कर सकता। उन्होंने ईश्वरीय दूत, पैगम्बर तथा अवतार की कल्पना का खंडन किया।

5. नौकरी और अध्ययन

राममोहन राय ने ईस्ट इंडिया कंपनी के राजस्व-विभाग में नौकरी करना शुरू कर दिया। उन्होंने भागलपुर, रामगढ़ तथा अन्य स्थानों में एक विभाग में काम किया। इसके बाद 1809 ई० में वे उत्तर बंगाल स्थित रंगपुर में राजस्व अधिकारी श्री जॉन डिग्बी के सहायक पद पर आसीन हुए। वे 1809 ई० से 1814 ई० तक रंगपुर में सेवारत रहे। वे अपने अवकाश के समय को लोगों से तर्क-वितर्क में बिताते थे। उन्होंने यहीं रहते हुए तंत्र तथा जैन साहित्य का भी अध्ययन किया। वे यूरोप तथा इंग्लैण्ड की राजनीति पर भी सावधानी से अध्ययन करते थे। जॉन डिग्बी साहब इंग्लैण्ड से जितनी पत्र-पत्रिकाएं एवं अखबार मंगाते थे राममोहन राय पढ़ डालते थे। उन्होंने अपनी बाइस वर्ष की उम्र में अंग्रेजी सीखना आरम्भ किया। अंग्रेजी भाषा की पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने से उनका अंग्रेजी-ज्ञान बढ़ता गया। योरोप के उदारतावाद से भी राममोहन राय प्रभावित हुए।

6. नौकरी त्यागकर मिशन की ओर

जब 1814 ई० में जॉन डिग्बी साहब भारत छोड़कर चले गये तब राममोहन राय भी ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी छोड़कर कलकत्ता में रहने लगे। वे अंधरूढ़ियों, अंधविश्वासों, निरर्थक धार्मिक संस्कारों और हानिकारी रीति-रिवाजों को हटाकर भारतीय-समाज एवं हिन्दू-समाज को स्वस्थ रूप देना चाहते थे। उन्होंने शास्त्रों को अस्वीकारा नहीं, किन्तु उनकी बातों पर विवेक की कसौटी लगाकर गलत को अस्वीकारने तथा सही को स्वीकारने की राय दी। राममोहन राय शास्त्र के इस वचन को बराबर दोहराते रहते थे—''बच्चे की भी तर्कपूर्ण एवं विवेकयुत बातें मान लेना चाहिए और यदि ब्रह्मा भी तर्कहीन बात कहे तो नहीं मानना चाहिए।'' उन्होंने लिखा है कि उपनिषदों ने कहीं भी ब्रह्मतत्त्व को अलौकिक नहीं कहा है।

7. आत्मीय सभा की स्थापना और उसका विरोध

राममोहन राय ने 1815 ई० में आत्मीय-सभा की स्थापना की। उन्होंने इस सभा के माध्यम से कुलीनवाद, जातिवाद और लड़की बेचने की प्रथा का विरोध किया। इतना ही नहीं, पिता और पति की संपत्ति में स्त्रियों के अधिकार का समर्थन किया। परन्तु हिन्दू रूढ़िवादियों के पक्षधर 'समाचार चंद्रिका' ने

और एक उपनिवेशवादी अंग्रेज बुल ने राममोहन राय के उदारतावाद का विरोध किया। ये दोनों राममोहन के विरुद्ध खड़े हो गये। रूढ़िवादी हिन्दुओं की धर्मसभा ने भी उनका घोर विरोध किया, इसलिए राममोहन की आत्मीय-सभा बंद हो गयी। झूठ ने कुछ दिनों के लिए सत्य को ढक लिया।

राममोहन राय ने अपनी सफाई दी कि हम हिन्दू धर्म के विरोधी नहीं हैं, किन्तु उसकी त्रुटियों को सुधारना चाहते हैं। उन्होंने शास्त्रों का अनादर कभी नहीं किया, किन्तु उनके कथनों की जांच-परख कर मानने-न-मानने की बात कही। परन्तु कट्टर रूढ़िवादी हिन्दू उनके खून के प्यासे हो गये।

बंगाल में सती-प्रथा जोर पर था। विधवा के धन को हड़पने का यह एक षड्यंत्र था। जब कोई मर जाता तब उसकी पत्नी को विवश किया जाता कि वह मृत पति की लाश के साथ चिता में अपना देह-दाह कर ले। राममोहन राय उसके घोर विरोधी थे। वे प्रयत्न कर रहे थे कि इस क्रूर तथा विवेकहीन प्रथा का कानून बनाकर अंत हो। परंतु रूढ़िवादी हिन्दू अपनी धर्म-सभा नाम की संस्था के माध्यम से राममोहन राय का प्रबल विरोध कर रहे थे। ऐसे विवेकहीन विद्वान अंग्रेज भी थे जो सतीप्रथा के समर्थक थे। उदाहरणार्थ, प्राच्यभाषाविद 'होरेस हाइमन विल्सन' का नाम लिया जा सकता है। वे कह रहे थे कि सतीप्रथा का विरोध करना हिन्दू-धर्म में हस्तक्षेप करना है। रूढ़िवादी हिन्दुओं ने सती-प्रथा अर्थात विधवा-देहदाह को स्थिर रखने की अपील की और कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के वकील फ्रांसिस माथी को अपना वकील निर्धारित किया। माथी महोदय ने कलकत्ता में अपने भाषण में घोषणा की कि आपका प्रतिनिधि बनकर मैं इंग्लैण्ड जा रहा हूं। मैं भरपूर प्रयत्न करूंगा कि सती-प्रथा स्थिर रहे। परंतु प्रतिगामी शक्तियों के इतना उठाव-पटक करने पर भी राममोहन राय के प्रयत्न से सती-प्रथा बनाम विधवा-देह-दाह बंद होने का कानून पास हो गया।

राममोहन राय ने 1815-17 के बीच वेदांत सूत्र, वेदांत सार तथा ईश, कठ, मांडूक्यादि उपनिषदों का बंगला एवं इंगलिश में अनुवाद किया। उन्होंने 1823 ई० में एक निबंध लिखा ''हिन्दू स्त्रियों का अधिकारापहरण''। इसमें उन्होंने सरकार से अपील की कि हिन्दू स्त्रियों को उनके पिता और पति के धन में हिस्सा मिलना चाहिए। उन्होंने 1827 ई० में संस्कृत 'मृत्युंजय' की 'वज्रसूची' का संपादन और प्रकाशन किया। इस ग्रंथ में जातिभेद को दूरकर मानव एकता की बात बतायी गयी है।

8. एक नई संस्था की स्थापना

राममोहन राय ने सन् 1821 ई० में 'यूनिटेरियन ऐसोसिएशन' नाम की संस्था कायम की और उसके आधार से जन-जागरण का प्रयत्न किया गया।

उस संस्था के उद्देश्य और प्रयोजन के संबंध में उन्होंने लिखा—''और इसलिए जो कदम शिक्षा के लाभों को बढ़ावा देने के लिए, अज्ञान-अंधविश्वास, कट्टरता और धर्मांधता दूर करने के लिए, ज्ञान का स्तर उठाने के लिए नैतिकता के सिद्धान्तों के शुद्धिकरण, व्यापक सहिष्णुता और उदारता को बढ़ावा देने के लिए उठाये जायेंगे, सभा के उद्देश्यों की सीमा में होंगे। जन साधारण की परिस्थितियों में सुधार, उपयोगी कलाओं और श्रमशील आदतों को बढ़ावा देकर जन साधारण की सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों का सुधार इस सभा का प्रयोजन है। अनुभव से यह सिद्ध होता है कि जब मूल प्राकृतिक और सामाजिक आवश्यकताएं ठीक से पूरी होती हैं, तभी बुद्धि, नैतिकता और धर्म के उच्चस्तरीय विकास की आशा की जा सकती है।''[1]

9. इसाई पादरियों से विवाद

उन दिनों बंगाल के सीरामपुर में इसाइयों का बहुत बड़ा प्रचार केन्द्र था। कहा जाता है कि शुरू में बड़े ज्ञानी और दयालु पादरी प्रचार में आये। उनमें 'रेवरेंड विलयन कैरी' का नाम उजागर है। उनका बंगाल कृतज्ञ है। परंतु इसाई धर्म प्रचारकों का मुख्य उद्देश्य था तथाकथित धर्म परिवर्तन जो वस्तुतः संप्रदाय परिवर्तन है। इसलिए वे सांप्रदायिकता के शिकार थे। उनका मुख्य काम था हिन्दू-समाज-विरोधी प्रचार। यह उनका पूर्वग्रह घोर अविवेकपूर्ण था।

राममोहन राय हिन्दू-समाज-विरोधी प्रचार का उत्तर पर्चे तथा पत्रिका निकालकर देने लगे जो बंगला और इंगलिश दोनों में होते थे। राममोहन ने इसाइयों के ''ट्रिनिटेरीयनिज़्म'' अर्थात त्रियेक परमेश्वरवाद की कड़ी आलोचना की जिसमें पिता, पुत्र तथा पवित्र आत्मा का सिद्धान्त माना जाता है। उन्होंने नई बाइबिल में वर्णित ईसा के संबंध में आरोपित चमत्कार का भी खंडन किया। इसको लेकर इसाई क्रुद्ध हो गये। फिर दोनों तरफ में वर्षों पर्चेबाजी चलती रही और पत्र-पत्रिकाओं में उत्तर-प्रत्युत्तर होते रहे। इसाई पादरी राममोहनराय को अभद्र शब्दों से भी लिखते रहे, परंतु राममोहन राय ने सदैव सभ्य एवं गंभीर भाषा-शैली का प्रयोग किया।

इसाई पादरी जब राममोहन राय के तर्कों का सही उत्तर देने में असमर्थ रहे तब उन्होंने गलत शब्दों का प्रयोग किया। यहां तक कि डॉक्टर मार्शमैन ने कहा कि हिन्दू धर्म का मूल 'फ़ादर ऑफ़ लाइज़' है। अर्थात इसकी जड़ असत्य का बाप है। राममोहन राय ने उत्तर में कहा कि हमें धार्मिक बहस करना चाहिए, गाली-गलौज नहीं। उन्होंने लिखा—''हिन्दू धर्म की विश्वव्यापी उदारता, सहिष्णुता और विनम्रता को निभाते हुए मैं किसी भी धर्म का विरोध नहीं कर

---

1. **वही, पृष्ठ 17।**

सकता। इसाई धर्म का विरोध तो दूर की बात है। इस धर्म के अनुयायियों के प्रति मेरा आदर मुझे इस धर्म की कमियों को बेनकाब न करने देता, अगर इसाई लेखकों द्वारा हिन्दू-धर्म पर लगातार कीचड़ उछालने की प्रवृत्ति ने हमें मजबूर न किया होता। मुझे अब भी दोनों धर्मों की तुलनात्मक विशेषताओं का बारीकी से जांच करने में बहुत खुशी होगी, बशर्ते इसाई लेखक इस विवाद को विनम्र और आदरपूर्ण भाषा में जारी रखें, जैसा कि साहित्यिक लोगों और सत्य के अन्वेषियों को शोभा देता है।''[1]

राममोहन राय का इसाई पादरियों से वाद-विवाद के संबंध में उनकी शालीनता की प्रशंसा करते हुए इंडिया गजट के संपादक ने लिखा था कि राममोहन के दिमाग की तीक्ष्णता, उनकी बुद्धि की तर्कशीलता और उनका अद्वितीय स्वभाव प्रकट होता है, जिससे वे शालीनता के साथ तर्क-वितर्क कर सकते हैं।[2]

राममोहन राय सदैव शांत, शालीन रहे और वे वाद-विवाद में सदैव उच्च आदर्श रखते रहे। जब एक बार एक इसाई ने राममोहन को कहा कि बिना मूल बाइबिल पढ़े उन्हें इसके विषय में बहस करने का क्या अधिकार है; तो राममोहन राय उक्त बातें मानकर दो वर्षों तक इस वाद-विवाद से बिलकुल अलग रहे और इसी बीच उन्होंने लैटिन, ग्रीक और हिब्रू भाषाओं का अध्ययन किया। इसके बाद उन्होंने मूल बाइबिल की भाषा हिब्रू में ही उसे पढ़ा और इसाइयों को उत्तर दिया।

इसाइयों के त्रियेक परमेश्वरवाद और ईसा मसीह के प्रायश्चितवाद का उन्होंने विवेकपूर्ण खंडन किया। उनके इस प्रयास से एक बेप्टिस्ट इसाई प्रचारक रेवरेंड विलियम ऐडम ने राममोहन के विचारों को स्वीकार कर इसाई त्रियेक परमेश्वरवाद का खंडन करना शुरू कर दिया। इससे कलकत्ता के इसाई-समाज में हलचल मच गयी। इसाई जनता का उनके लिए इतना घोर विरोध बढ़ गया कि कलकत्ता के समसामयिक विशप ने रेवरेंड विलियम ऐडम पर धर्मद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें भारत से इंग्लैण्ड भेजने का निर्णय कर लिया। परन्तु जब उन्होंने इंग्लैण्ड के अटार्नी जनरल से यह जाना कि धर्म की रूढ़ियों को छोड़ देने पर अब किसी को दंड नहीं मिलता, तब वे बहुत हताश हुए।

राममोहन राय द्वारा इसाई संप्रदाय की समीक्षा को लेकर भारत के इसाई भले क्षुब्ध थे, परन्तु जब राममोहन राय के लेख योरोप और अमेरिका में छपे तब वहां के विद्वानों ने उनका आदर किया तथा उनकी प्रशंसा की। राममोहन

---

1. **वही, पृष्ठ 20।**
2. **वही, पृष्ठ 20।**

राय यही चाहते थे कि इसाई पादरी हिन्दू-समाज पर व्यर्थ कीचड़ न उछालें और नई बाइबिल की चमत्कारी तथा पैगम्बरवादी बकवास को हटाकर उसके नैतिक पक्षों का प्रचार करें जो मानव के लिए कल्याणकारी हैं।

राममोहन राय हिन्दू, इसाई या किसी भी पंरपरा के अंधविश्वास, अंधरूढ़ि, चमत्कार, अवतारवाद, पैगम्बरवाद, अलौकिकता आदि के विरोधी थे।

10. शिक्षा-सुधार

ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार ने एक संस्कृत विद्यालय खोलने का निर्णय लिया, जिसमें पंडितों द्वारा संस्कृत व्याकरण और हिन्दू धर्मशास्त्र पढ़ाया जाता। राममोहन राय ने इसका विरोध किया। उन्होंने 11 दिसम्बर, 1823 ई० को गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा— ''सरकार एक ऐसा विद्यालय खोल रही है जिसमें हिन्दू पंडित ऐसी शिक्षा देंगे जो यहां पहले से ही प्रचलित है। यह विद्यालय (लार्ड बेकन से पहले योरोपीय विद्यालय की तरह) आज की युवा पीढ़ी को, उनके मस्तिष्क को केवल व्याकरण की सुंदरता और आध्यात्मिक विशेषताओं से लाद देगा। जिनका सामाजिक जीवन में कोई खास उपयोग नहीं है। आज से दो हजार साल पहले का प्रचलित ज्ञान ही यहां का विद्यार्थी सीख पायेगा। इसमें बढ़ोत्तरी सिर्फ इतनी होगी कि इस ज्ञान में अब तक के विचारशील व्यक्तियों द्वारा जोड़ी गयी व्यर्थ की खोखली टिप्पणियां और हो जायेंगी। ऐसा सारे भारतवर्ष में इस समय हो रहा है। अगर इंग्लैण्ड को वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ रखना होता तो 'बेकोनियन दर्शन' को उस समय की शिक्षा-पद्धति (जो अज्ञान को चिरस्थायी बनाने में पूर्णतया समर्थ थी।) के स्थान पर आने की अनुमति न दी जाती। यदि ब्रितानी विधान की यही पालिसी है कि इस तरह की शिक्षा द्वारा इस देश को अंधकार में रखा जाये, तो संस्कृत शिक्षा-पद्धति इस देश को अंधकर में रखने के लिए उत्तम रहेगी। लेकिन जैसा कि ब्रितानी विकास के लिए सरकार जनता को केन्द्र मानती है, यह बेहतर होगा कि विकसित और प्रबुद्ध शिक्षा-पद्धति को प्रश्रय दिया जाये। इसमें गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र और शरीर तथा इसी तरह के अन्य उपयोगी विज्ञान पढ़ाये जा सकते हैं। योरोपीय शिक्षा प्राप्त कुछ प्रबुद्ध व्यक्तियों को इसके लिए नियुक्त किया जा सकता है। उनके लिए एक कॉलेज, जिसमें सभी जरूरी पुस्तकें, अन्य उपकरण तथा वैज्ञानिक यंत्रादि की व्यवस्था हो, खोला जा सकता है।''[1]

राममोहन राय का उपर्युक्त पत्र भारत के धर्माध्यक्ष विशप हेबर ने लार्ड एमहर्स्ट के पास पहुंचा दिया, जे० एच० हैटिसन ने जो जनरल कमेटी ऑफ

---

1. वही, पृष्ठ 26-27।

पब्लिक इन्स्ट्रक्शन के सभापति थे, लिखा—'पत्र जवाब देने योग्य नहीं है।'

राममोहन राय की उपर्युक्त अपील बारह वर्ष के बाद नये गवर्नर जनरल ने मैकाले की वकालत से स्वीकार कर पायी। योरोप में चर्च शिक्षा-पद्धति से हटकर वैज्ञानिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार वहां के लोग शिक्षित होकर आगे बढ़ रहे थे। राममोहन राय वैसी ही उन्नति भारत में भी देखना चाहते थे। वैसे वे संस्कृत-शिक्षा तथा आध्यात्मिक शिक्षा के विरुद्ध नहीं थे। उन्होंने स्वयं संस्कृत पाठशाला खोलकर उसकी शिक्षा देने का प्रबंध किया था, परन्तु वे भारत में विज्ञान-शिक्षा चाहते थे। राममोहन राय ने स्वयं एक इंगलिश हाईस्कूल खोला और उसके प्रबंधकों में से डेविड हेयर तथा रेवरेंड एडम थे। महर्षि देवेंद्र नाथ ठाकुर इस स्कूल के छात्र थे जो आगे चलकर रवींद्र नाथ टैगोर के जन्मदाता हुए। अन्य पाठशालाओं में विज्ञान की शिक्षा इंगलिश में दी जाती थी, परन्तु इस स्कूल में विज्ञान की शिक्षा बंगला भाषा में दी जाती थी। राममोहन राय ने व्याकरण, भूगोल, रेखागणित और खगोल पर पाठ्य पुस्तकें लिखीं।

11. बंगला गद्य के परिमार्जक

बंगाल बंगला भाषा का केन्द्र है, इसे कौन अस्वीकार सकता है। परंतु राममोहन राय के पहले बंगला संस्कृत भाषा के कठिन शब्दों से भरी रहती थी। जब अंग्रेज कलकत्ता में आये और उन्होंने 'ईस्ट इण्डिया कंपनी' की स्थापना की, उन्हें अपने इसाई संप्रदाय के प्रचार तथा शासन चलाने के लिए बंगला सीखना तथा प्रचारकों को सिखाना था। इसलिए उन्होंने बंगला भाषा का व्याकरण लिखवाया तथा छपवाया। इस तरह ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार तथा इसाई मिशनरी से बंगला का प्रचार बढ़ने लगा। परंतु बंगालियों के लिए संस्कृत भाषा की जटिलता से हटकर सरल एवं परिमार्जित बंगला का व्याकरण राममोहन राय ने लिखा। उनके ग्रंथ का नाम है गौड़ीय व्याकरण। यह कलकत्ता स्कूल बुक्स सोसायटी के तत्त्वावधान में 1833 ई० में छपा। इसमें ग्यारह अध्याय तथा अड़सठ विषय हैं। राममोहन राय ने 1815 ई० में बंगला गद्य में वेदांत ग्रंथ लिखा था। बंगला गद्य को परिमार्जित रूप देकर उन्होंने बंगला भाषा का सुधार किया। उनसे बल पाकर आगे बंकिमचंद्र चटर्जी तथा रवींद्रनाथ टैगोर ने बंगला भाषा में अनुपम साहित्य लिखे।

बंगला भाषा में ठुमरी, ठप्पा आदि गीत तो प्रचलित थे, परन्तु जिसमें गहराई, सरलता और आकर्षण है वह ध्रुपद-गीत अस्तित्व में नहीं था। यह तब तक केवल हिन्दी में ही चलता था। परंतु राममोहन राय ने पहली बार अपनी ब्रह्म सभा के लिए बंगाल भाषा में बत्तीस ध्रुपद-गीतों की रचना कर उसे दिया।

12. राजनीतिक सुधार का प्रयास

राममोहन राय धार्मिक-सामाजिक सुधार के साथ राजनीतिक सुधार भी चाहते थे। परन्तु उन्हें अपने हिन्दू-समाज के बिखरे हुए रूप का दुख था। उन्होंने सन् 1828 ई० में लिखा ''मुझे अफसोस है कि हिन्दुओं का वर्तमान धार्मिक सिद्धान्त राजनीतिक विकास को दृष्टि में रखकर नहीं बनाया गया। जातियों की भिन्नताओं और उनके अनगिनत विभाजन ने उन्हें राजनीति से बिलकुल अलग कर दिया है। धार्मिक विशेषताओं, उत्सवों, शुद्धिकरण के कानून ने उन्हें किसी भी साहसिक कार्य के अयोग्य बना दिया है। इसलिए मैं सोचता हूं कि इनके धर्म में कुछ परिवर्तन आवश्यक है। कम-से-कम राजनीतिक लाभ और सामाजिक चैन की दृष्टि से।''[1]

राममोहन राय सन् 1821-22 में बंगला में 'संवाद कौमुदी' तथा फारसी में ''मिरात-उल-अखबार'' ये साप्ताहिक पत्र निकाले। उन्होंने 'मिरात-उल-अखबार' में कुछ ऐसे स्वतन्त्र चिंतन के लेख लिखे जिससे ईस्ट इंडिया कम्पनी सरकार के हस्तक्षेप से उसे बंद करना पड़ा। उन्होंने सरकार को अनेक सुझाव दिये थे, जैसे जुडिशियल ऐसेसरों और ज्वांइट जजों के पदों पर भारतीयों को नियुक्त करना, सिविल तथा फौजदारी कानून स्थापित हो, सरकारी खर्चे कम हों, न्याय संबंधी मामलों में प्रबंधक अलग रखे जायें, ग्राम पंचायत को न्याय का अधिकार प्राप्त हो।

वर्षों बाद राममोहन राय की अपीलें फलित होने लगीं। 1842 में 'बंगाली स्पेक्टेटर' ने लिखा ''बाद के चार्टर में (1833) जो सुविधाएं हमें मिली हैं उनके लिए हम बड़े पैमाने पर राममोहन राय के ऋणी हैं।'' समाचार दर्पण ने लिखा ''आज ही नहीं, भविष्य में भी देश को सुविधाएं दिलवाने में वे सहायक होंगे। उन्हें देश का संरक्षक माना जायेगा।''

राममोहन राय ने प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए फिरंगी सरकार से जबर्दस्त अपील की थी। उन्होंने इंग्लैण्ड में चल रहे 'रिफॉर्म आंदोलन' का समर्थन किया। जब 1823 ई० में दक्षिण अमेरिका का स्पेनी क्षेत्र स्पेनी तानाशाही से मुक्त हुआ तब राममोहन राय ने मित्रों को भोजन के लिए निमंत्रण दिया। उनके एक अंग्रेज मित्र ने उनकी इस उदारता पर 'एडिन बर्ग' पत्रिका में उनकी प्रशंसा की। पुर्तगाल में संवैधानिक सरकार लागू होने पर वे प्रसन्न हुए। यूनियनों के तुर्कों के विरुद्ध स्वतन्त्र संघर्ष का उन्होंने समर्थन किया। इतना ही नहीं, आयरलैंड पर ब्रिटिश अधिकार का उन्होंने विरोध किया और आयरलैंड के अकालग्रस्त जनता के सहायतार्थ उन्होंने धन भेजा।

---

1. **वही, पृष्ठ 33।**

उन्होंने कहा था कि पूरी मानव जाति एक परिवार है। उसमें अनेक राष्ट्र, जातियां, संप्रदाय आदि शाखा मात्र हैं। उन्होंने अंताराष्ट्रीय एकता तथा देशों के पारस्परिक व्यापार तथा झगड़ों की समस्याओं का समाधान करने के लिए अंताराष्ट्रीय सभा की कल्पना की थी, जो बहुत दिनों के बाद फलित होने लगी। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के बनने के बहुत पहले उन्होंने इस पर विचार कर लिया था।

13. आर्थिक सुधार का प्रयास

राममोहन राय ने जमींदारों द्वारा होते हुए किसानों के शोषण पर आवाज उठाई। उन्होंने कहा कि किसानों की जमीन पर लगे हुए कर कम किये जायं और इस कमी की पूर्ति विलासी वस्तुओं पर अधिक कर लगाकर किया जाये। उन्होंने कहा कि भारी-भरकम वेतन वाले अंग्रेज अफसरों को इंग्लैण्ड से न लाकर भारतीय शिक्षितों को वह पद दिया जाये जिससे सरकार का खर्च कम हो सकता है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी नमक की साधारण कीमत को एक हजार प्रतिशत बढ़ाकर बेचती थी। बंगाल में सवा लाख मजदूर नमक बनाते थे, जिनकी दशा गुलामों जैसी थी। इस पूरे व्यापार पर कुछ भारतीय धनियों का कब्जा था। राममोहन राय के अथक परिश्रम से फिरंगी सरकार ने भी उनकी बात मानी और इस तरह का कानून बना कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का नमक-एकाधिकार समाप्त हो गया।

राममोहन ने भारत से विभिन्न स्रोतों से इंग्लैण्ड जाते हुए धन का विरोध किया। इंग्लैण्ड में स्वतंत्र व्यापारियों और तानाशाह एकाधिकारियों के बीच संघर्ष चल रहा था। राममोहन राय ने स्वतंत्र व्यापारियों का पक्ष लिया और एकाधिकारियों का विरोध किया। इस काम में उन्हें पंडित द्वारिकानाथ टैगोर का सहयोग मिला जो रवींद्रनाथ टैगोर के पितामह थे। वे धनिक, विद्वान तथा उदार थे। मुसलमानी शासन की जड़ता में भारत संसार से अलग-थलग पड़ गया था। इंग्लैण्ड के व्यापारियों ने भारत में उद्योग-धंधे लगाये। जिसका समर्थन राममोहन राय तथा द्वारिकानाथ टैगोर ने किया। इससे यह लाभ हुआ कि जमींदारों के बर्बर व्यवहार से किसानों को अवकाश मिला। सामंती आर्थिक व्यवस्था से बदलकर पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने लोगों को राहत दी।

14. ब्रह्मसभा तथा ब्रह्मसमाज

राममोहन राय, द्वारिकानाथ टैगोर, राममोहन राय के ज्येष्ठ पुत्र राधाप्रसाद राय आदि कुछ भारतीय सज्जन तथा कुछ अंग्रेजों ने मिलकर सन् 1827 ई० में कलकत्ता में एक संस्था की स्थापना की थी जिसका नाम था 'यूनिटेरियन ऐसोसिएशन'। यह दो वर्षों में ही बंद हो गयी। इसके बाद अपने सहयोगियों

की राय से राममोहन राय ने ब्रह्मसभा की स्थापना की। इस संस्था के लिए 48 चित्तपुर रोड पर एक मकान किराये पर लिया गया। संस्था का उद्घाटन 20 अगस्त, 1828 ई० को हुआ। 1830 ई० में इसके लिए अपना भवन मिल गया। यह संस्था ईश-प्रार्थना और हर तरह से उदार विचारों के लोगों का संगम बना। यहां हर संप्रदाय के लोग एक साथ मिल सकते थे। इस ब्रह्मसभा को आगे चलकर ब्रह्मसमाज कहा जाने लगा।

उक्त संस्था के विरोध में रूढ़िवादी हिन्दुओं की एक संस्था स्थापित हुई इसका नाम था 'धर्मसभा' और इसके अध्यक्ष थे श्री राधाकांत देव।

15. इंग्लैण्ड प्रस्थान

राममोहन राय के इंग्लैण्ड जाने के तीन कारण थे। दिल्ली के बादशाह अकबर द्वितीय की ओर से ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट को स्मरण-पत्र समर्पित करना, भारत में सती-प्रथा को समाप्त करने के लिए 'हाउस ऑफ कामंस' को स्मरण-लेख देना और हाउस ऑफ कामंस में ईस्ट इंडिया कंपनी के चार्टर के नवीनीकरण पर होने वाली बहस के समय वहां उपस्थित रहने की आवश्यकता।

राममोहन राय 15 नवम्बर, 1830 ई० को एलबियन नामक जल-जहाज पर चलकर 8 अप्रैल, 1831 ई० में इंग्लैण्ड पहुंचे। उनको यात्रा में 145 दिन लगे। उनके पहुंचने के बहुत पहले से उनकी इंग्लैण्ड में प्रसिद्धि हो गयी थी। जब उन्होंने 1816 ई० में वेदान्त पर एक किताब अंग्रेजी में लिखकर प्रकाशित की थी जिसका नाम था 'एन एब्रिज़मेंट ऑफ वेदान्त' तो उसकी विस्तृत आलोचना इंग्लैण्ड के मासिक पत्र 'मंथली रिपोजिटरी ऑफ थियोलाजी एण्ड जनरल लिट्रेचर' में प्रकाशित हुई थी। प्रसिद्ध इतिहासकार 'विलियम रस्को' ने जो वर्षों से पक्षाघात से बिस्तर पर पड़े थे, अपने पुत्र द्वारा राममोहन राय को अपने घर बुलवाकर उनसे भेंट की तथा उनका बड़े आदर से स्वागत किया था। ब्रितानिया के महान दार्शनिक जेर्मी बेंथम उनसे मिलने आये। उन्होंने राममोहन राय को बहुत प्रशंसित और मानवता की सेवा में संलग्न महान प्रेमी लिखा।

राममोहन राय जब इंग्लैण्ड पहुंचे तब उन्होंने पहला काम दिल्ली के बादशाह अकबर द्वितीय का किया। उनकी कुछ मांगें पूरी हुईं और 13 फरवरी, 1833 ई० को दिल्ली बादशाह की आमदनी तीन लाख रुपये बढ़ा दी गयी।

ब्रिटिश-शासन ने राममोहन राय को दिल्ली-बादशाह का विशेष प्रतिनिधि मानकर उन्हें राजा की उपाधि दी। तब से राममोहन राय को 'राजा राममोहन राय' लिखा और कहा जाने लगा। राजा राममोहन राय का सम्मान करते हुए

ब्रिटिश-शासन ने उन्हें 7 सितंबर, 1831 ई० को सेंट जेम्स पैलेस में विलियम चतुर्थ से भेंट करने की अनुमति दी, लंदन ब्रिज के उद्घाटन के अवसर पर उनको भोज का निमंत्रण दिया। उनके सम्मान में लंदन में कई गोष्ठियां हुईं जिनमें जेर्मी बेंथम जैसे प्रसिद्ध लोग भी आये। राजा राममोहन राय के उदार और सार्वभौमिक विचारों तथा सेवाओं के कारण लंदन के बड़े-बड़े लोगों ने उनकी प्रशंसा की।

16. अंतिम यात्रा

राजा राममोहन राय का शरीर सुदृढ़ था। परन्तु अधिक मेहनत और आर्थिक चिंता से वे कमजोर हो गये। आर्थिक-संकट का कारण था उनके द्वारा कलकत्ता तथा लंदन में चलायी जाने वाली कंपनियों का फेल हो जाना। कैसी विडम्बना है, जब उनको राजा की उपाधि मिली तब उनके ऊपर आर्थिक संकट आया।

मित्रों की राय से वे स्वास्थ्य-लाभ के लिए लंदन छोड़कर ब्रिस्टल आ गये। वहां उनके लिए सब प्रकार से आराम की व्यवस्था हुई। परंतु वे 19 सितंबर को एकाएक अस्वस्थ हो गये। उनको तीव्र ज्वर तथा सिरदर्द हो गया। उनके स्वास्थ्य की दशा बिगड़ती गयी। डेविड हेयर की बहिन मिस हेयर ने उनकी काफी सेवा की। अनेक डॉक्टर उनकी देखभाल करते रहे। परन्तु मौत की कोई दवा नहीं होती। अंततः राजा राममोहन राय ने 27 सितंबर, 1833 ई० को अपनी इकसठ (61) वर्ष की उम्र में शरीर छोड़ दिया।

उनके चिकित्सक डॉक्टर एस्टलीन उनके कक्ष में थे। उन्होंने उनकी अंतिम यात्रा के विषय में लिखा है—खूबसूरत चांदनी रात थी। खिड़की की ओर मैं, श्री हेयर और मिस हेयर गांव की शांत आधी रात का नजारा देख रहे थे। दूसरी तरफ वह अजीब ढंग से आखिरी सांस ले रहे थे। इसे मैं भूल नहीं सकता। मिस हेयर को अब कोई आशा न थी। वे राजा के पास जाने का साहस भी गंवा चुकी थीं। पास ही पड़ी एक कुर्सी पर सिसक रही थीं। ढाई बजे श्री हेयर ने मेरे कमरे में आकर दुखद समाचार सुनाया। सवा दो बजे उन्होंने अंतिम सांस ली। और मिस कलेक्ट ने लिखा मरते समय उनके होठों पर सिर्फ एक शब्द था—ओम्। इससे यही लगता है कि मौत के अकेलेपन और जिंदगी की भीड़ में भी उनकी आत्मा का जाप ही मुख-धर्म था।''[1]

18 अक्टूबर, 1833 ई० को उनके शव को स्टेप्लटन ग्रोव में दफना दिया गया। जब 1842 ई० में राजा राममोहन राय के अनुयायी देवेन्द्रनाथ टैगोर इंग्लैण्ड पहुंचे तो उन्होंने उनके ताबूत को स्टेप्लटन ग्रोव से निकलवाकर

---

1. **वही, पृष्ठ 52-53।**

आर्नोसवेल में गड़वा दिया और 1844 ई० में भारतीय रीति से स्मारक-भवन बनवा दिया गया।

17. उपसंहार

राजा राममोहन राय स्वतंत्रचेता पुरुष थे। वे जातिवाद से हटकर मानवता के समर्थक थे। वे अंधविश्वास से समाज को उबारकर ज्ञान के आलोक में लाना चाहते थे। वे बहुदेववाद, अवतारवाद, पैगंबरवाद से हटकर एक ईश्वर को महत्त्व देते थे, जो उस समय के लिए बहुत बड़ी क्रांति थी। उन्होंने विधवाओं के देहदाह को, जिसका नाम सती होना था, अपने अटूट परिश्रम से रोकवाया और उसके लिए उन्होंने फिरंगी-सरकार से 4 दिसम्बर, 1829 ई० में कानून पास करवा लिया।

वे हिन्दू समाज को अंधरूढ़ियों और अंधविश्वासों तथा जाति-पांति के कीचड़ से निकालकर उसे स्वस्थ रूप देना चाहते थे। वे इसाई मिशनरियों की आलोचना से हिन्दू समाज को बचाने के लिए हिन्दू-समाज के दोषों को सद्‌गुण बताने वाले नहीं थे। वे हिन्दू तथा अहिन्दू सबकी अंधरूढ़ियों के निर्भीक आलोचक थे। उनके खरे विचारों से चिढ़कर उनके पिता से लेकर तिब्बती बौद्ध लामा तथा भारत के रूढ़िवादी पंडित और इसाई पादरी आदि सब उनसे नाराज थे। उन्होंने जीवनपर्यंत अपने संयम और गरिमा से सदैव सबकी अंधरूढ़ियों की बखिया उधेड़ी। मानो वे संत कबीर के ही कुछ काम कर रहे थे।

वे भारतीयता के पक्षधर तथा घोर आध्यात्मिक होकर भी योरोपीय खुलेपन तथा विज्ञान के समर्थक थे। वे चाहते थे कि हिन्दू समाज अपनी डिबिया में सिमिटकर न रहे, किन्तु संसार के अन्य संस्कृति-सभ्यताओं से सामंजस्य कर अपना ज्ञान तथा हर विकास का क्षेत्र बढ़ाये।

राजा राममोहन राय भारत के नभ पर एक जाज्वल्यमान तारे के रूप में उभरे, परंतु खेद है कि भारत के लोगों ने उनके महत्त्व को जितना समझना चाहिए उसका शतांश भी नहीं समझा। संतोष यही है कि भले ही उनका ब्रह्मसमाज आज निस्तेज पड़ा है और कलकत्ता में भी उसकी कहीं कोई आवाज नहीं सुनाई दे रही है, परन्तु उनके उद्देश्य आज भारत में चारों तरफ मुखरित हो रहे हैं। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और अंताराष्ट्र का कल्याण अंधविश्वास से हटकर सच्चे ज्ञान, मानवीय एकता और विश्वबंधुत्व में ही है, जिसके वे जीवनभर पोषक थे।

उनकी रचनाएं बंगला और इंगलिश में उनके नाम से 'ग्रंथावली' तथा 'द इंगलिश वर्क्स' नाम से प्रकाशित हैं।

18

अब्राहम लिंकन

जो अत्यन्त गरीबी में पला, जिसकी शिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था न हो सकी, जो गरीबों का पक्षधर, विरोधियों पर भी विश्वास और प्रेम करने वाला, जिसने स्वयं गोरा होकर काले नीग्रो को गुलामी से मुक्ति दिलाने में अपनी जान खो दी, और वर्तमान अमेरिका को इतनी सुदृढ़ स्थिति में पहुंचाया, उस महान मानवता के मसीहा अब्राहम लिंकन के जीवन की झलक यहां देखें।

1. लिंकन के माता-पिता

'नेंसी हेंक्स' नाम की एक अच्छे स्वभाव की सुंदरी लड़की थी। थोड़ी उम्र में उसका हैनरी स्पेरो नामक व्यक्ति से विवाह हो गया, किंतु कुछ काल में वह रिश्ता टूट गया। नेंसी वर्जीनिया के चाय बागान के मालिक के संपर्क में आकर उससे गर्भवती हो गयी। इसी दशा में नेंसी ने थॉमस लिंकन से विवाह कर लिया। आगे चलकर नेंसी से जो बालक पैदा हुआ उसका नाम अब्राहम लिंकन पड़ा। इस प्रकार अब्राहम लिंकन की माता का नाम नेंसी हेंक्स था और उसका पिता वर्जीनिया के चाय बागान का मालिक था, परंतु उससे अब्राहम लिंकन का सामना जीवन में कभी नहीं हुआ। अब्राहम को जो प्रसिद्ध पिता के रूप में मिले वे थॉमस लिंकन थे।

2. दारिद्र्य

थॉमस लिंकन कुल्हाड़ी से लकड़ी चीरकर बाजार में बेचते थे और कभी-कभी उनको लकड़ी चीरने के लिए कोई मजदूरी पर बुला लेता था। कुल मिलाकर कुल्हाड़ी से लकड़ी चीरना उनका पेशा था। इसमें आमदनी बहुत कम थी और परिवार में नौ सदस्य थे। उनके भोजन-वस्त्र का इंतजाम करना कठिन होता था। अब्राहम लिंकन जिस कमरे में जन्मे थे वह 16×18 फीट मिट्टी की फर्श का था। उसमें ही एक मिट्टी की चिमनी थी जिससे रसोई पकाने का धुआं बाहर निकलता था। नौ सदस्यों का परिवार इसी एक कमरे में रहता था।

थॉमस लिंकन द्वारा नेंसी हेंक्स से तीन बच्चे और पैदा हुए। इस प्रकार अब्राहम लिंकन चार भाई-बहन थे। थॉमस लिंकन और नेंसी हेंक्स दोनों अब्राहम लिंकन को प्यार से 'एबी' कहकर पुकारते थे।

संयुक्त राज्य अमेरिका होजिनविली के पास 'केंटुकी' नामक स्थान में 12 फरवरी, 1809 ई० में अब्राहम लिंकन का जन्म हुआ था। अब्राहम लिंकन छह वर्ष के हुए तब उन्हें केंटुकी की प्राथमिक शाला में पढ़ने के लिए प्रवेश कराया गया। वे एक वर्ष तक इस पाठशाला में पढ़ते रहे। गरीबी के कारण उन्हें ठीक कपड़े और जूते नहीं मिलते थे। अपने साथ के सजे-धजे बच्चों को देखकर अब्राहम हीनभावना से भर जाते थे। किंतु अब्राहम लिंकन पढ़ने-लिखने में तीव्र थे और उनकी लिखावट सुंदर होती थी। उनकी दृष्टि तीव्र थी। उनकी अभिव्यक्ति-शक्ति भी तीव्र थी। 'एबी' खेलता भी अच्छा था। मित्र बनाने में भी कुशल था। उसकी व्यवहार कुशलता अन्य बच्चों को आकर्षित करती थी। वह बच्चों को प्यार तथा आत्मीयता देता था। अतएव एबी सबका प्यारा रहता था।

काम-धन्धे को लेकर थॉमस लिंकन अपना परिवार लेकर केंटुकी को छोड़कर स्पेंसर काउंटी आ गये। इस समय एबी की उम्र सात वर्ष की थी। परिवार का निर्वाह होना कठिन हो गया था। इसलिए थॉमस लिंकन ने सात वर्ष के एबी की पढ़ाई छुड़ाकर उसके हाथ में कुल्हाड़ी पकड़ा दी और उसे अपने साथ लकड़ी काटने-चीरने के काम में लगा लिया।

लेकिन एबी सबेरे जल्दी नित्यक्रिया से निपटकर बाइबिल, कहानियां, यात्रावृत्तांत, अमेरिका के महान नेता तथा राष्ट्रपति वाशिंगटन की जीवनी पढ़ता और शाम लकड़ी चीरने का काम निपटाकर बच्चों के साथ खेलने के लिए भाग जाता।

3. माता की मृत्यु

नेंसी हेंक्स व्यवहार कुशल और सहृदय थी। वह बच्चों और पति से सुंदर और प्रेम का बरताव करती थी, परंतु दुर्भाग्य यह कि जब एबी नौ वर्ष का था तभी नेंसी हेंक्स की मृत्यु हो गयी। एबी (अब्राहम लिंकन) को सम्बन्धियों से अपने बालपन में ही पता लग गया था कि जिसके पास वह रहता है वह उसका जन्मदाता पिता नहीं है। इससे एबी के मन में एक विभाजक रेखा उभर आयी थी, परंतु वह माता नेंसी और पोषक पिता थॉमस लिंकन से भरपूर प्यार पाता था। अतएव माता के मरने पर नौ वर्ष का एबी अपने को अनाथ अनुभव करने लगा और वह बार-बार मां के मोह में रो पड़ता था। उसने आगे चलकर अपनी मां के प्रति कहा था—मैं जो कुछ आज हूं, सब मां का प्रताप है।

4. सौतेली मां

थॉमस लिंकन अपने छोटे बच्चों को दारिद्र्य दशा में पाल नहीं सकता था। अतएव उसने साराह जोंस्टन नाम की स्त्री से विवाह कर लिया। साराह जोंस्टन को पहले पति से तीन बच्चे थे। वे भी साथ में थे। एबी की सौतेली मां अब

साराह जोंस्टन थीं। साराह जोंस्टन ने जब थॉमस लिंकन से विवाह किया तब वह साराह लिंकन कहलाने लगी। सौतेली मां के घर में आने से एबी और सिमिट कर रहने लगा। एबी पिता के साथ लकड़ी चीरता और सुबह-शाम समय निकालकर बाइबिल आदि पुस्तकें पढ़ लेता और बच्चों के साथ खेल लेता।

घर में एबी ही बड़ा बच्चा था। साराह लिंकन एबी के मन का अध्ययन करने लगी और उसे एबी को संभालने की चिंता सताने लगी।

एक दिन एबी शाम को खेलकर घर में आया, पानी पिया और घर के पिछवाड़े जाकर घुटनों पर मुख रखकर रोने लगा। साराह लिंकन एबी के पीछे पहुंच गयी और उसे रोते पाया। साराह ने एबी के मुंह को उठाकर उसे अपनी गोद में चिपका लिया और कहा कि बेटा! तुम परिवार के बड़े बच्चे हो और तुम ही जब इस तरह रोओगे तब तुम्हारे अन्य भाई-बहन की क्या दशा होगी?

एबी ने कहा कि मुझे मां की याद आकर रुलाई आती है। साराह ने कहा कि अब तो वह लौट नहीं सकती। आज से मैं तुम्हारी मां हूं और दुख बंटाने वाली मित्र भी हूं। तुम आज से अपनी हर पीड़ा मुझसे अवश्य बताओ। मैं तुम्हारी हर पीड़ा को मिटाने का प्रयत्न करूंगी। मैं तुम्हें दुखी नहीं रहने दूंगी। सौतेली मां से एबी इतना प्यार पाकर भावविभोर हो गया और उसके सीने से चिपककर देर तक रोता रहा।

सौतेली मां से सगी मां जैसा प्यार पाकर एबी आश्वस्त हो गया और अपनी मां के वियोग का दुख भूलने लगा।

साराह लिंकन शिक्षित और सुसंस्कृत महिला थी। उसने एबी को स्कूली शिक्षा में लगा दिया। अब तक एबी सात स्कूल छोड़ चुका था। जीवन की समस्या से उसे हर स्कूल छोड़ना पड़ा था।

5. इंडियाना प्रवास

थॉमस लिंकन स्पेंसर काउंटी भी छोड़कर परिवार सहित इंडियाना चले गये और वहां पर वे खेती का काम करने लगे। वे 1830 ई० तक इंडियाना में रहे। एबी की उम्र अब इक्कीस (21) वर्ष की हो गयी थी और वह लकड़ी चीरने का काम करते हुए पढ़ाई भी करता रहा। सन 1830 में ही थॉमस लिंकन अपनी पूरी जमीन 125 डॉलर में बेचकर इलिनाइस नामक प्रदेश में चले गये।

6. एबी (अब्राहम लिंकन) का पथ-परिवर्तन

अब्राहम लिंकन यहां से अपने पिता का साथ छोड़कर और अपने सौतेले भाई जॉन हेंस्टन तथा चचेरे भाई जॉन हेंक्स के साथ न्यू आरलीन्स चले गये।

परंतु वे वहां भी नहीं रहे, अपितु ऑफट नामक व्यक्ति के साथ न्यू सलेम नाम के एक छोटे गांव में जाकर रहने लगे। एक वर्ष तक अब्राहम लिंकन भटकते रहे। सन 1831 ई० तक अब्राहम लिंकन छह फुट चार इंच का लंबा युवक हो गया।

अब्राहम लिंकन युवक थे, चुलबुले थे, मित्रों को चुटकुले सुनाने में प्रवीण थे। उनको देखकर लोग बोल पड़ते थे—"लंबू! चुटकुले सुनाओगे?" फिर उनके चुटकुले शुरू हो जाते थे। उन्हें सुनते-सुनते लोग हंसते-हंसते भावविभोर हो जाते थे। अब्राहम लिंकन अपनी व्यवहार कुशलता से लोगों में प्रिय हो गये थे। उन्हें लोग प्यार से 'नॉटी बॉय' कहते थे। साथ-साथ उनके लेख प्रभावशाली हो गये थे। उनके लेखों के विषय में वहां कहावत चल पड़ी थी—Abraham Lincoln his hand and pen! He well be good but God knows when—लिंकन के हाथ और उनकी कलम! सचमुच वह अच्छा लिखेंगे पर भगवान जाने कब!

7. मई 1831 ई० की एक घटना

बाइस वर्ष के युवक लिंकन एक बार मित्रों के साथ न्यू ओरिलयंस शहर गये। वहां उन्होंने पहली बार गुलाम-प्रथा का वीभत्स रूप देखा—गोरे उन काले नीग्रो को जिनके प्रति भागने का डर होता था, लोहे की जंजीर में बांधकर रखते थे। उन्हें कोड़े लगाते थे, भूखे रखते थे। नीग्रो सब अपमान सहनकर उनके काम करते थे।

लिंकन ने बाजार में बिकती हुई एक नीग्रो युवती को देखा। उसे ऊंची जगह पर खड़ी कर दिया गया था, जिससे उसे लोग देख सकें। उसका मालिक गोरा उस काली युवती के अंगों पर हाथ फेरता जाता, उसके अंगों को उभारता जाता और उसकी बनावट की प्रशंसा करता जाता। वह उस युवती को धीरे-धीरे चलाता जिससे खरीदने वाले उसकी कीमत समझ सकें। जैसे पशु को खरीदते-बेचते समय उसकी परख की जाती है वैसे उसकी कीमत की परख की जाती थी।

इस दृश्य को देखकर युवा लिंकन सन्न रह गये। उनका मन कराह उठा। वे चुप रहे। उसी समय से उनका मन इस घृणित व्यवस्था के प्रति विद्रोही हो गया। उन्होंने अपने मित्रों से कहा—हे प्रभु! चलो, हम यहां से निकल भागें। यदि जीवन में कभी इस गुलाम प्रथा को बंद किया जा सके तो मैं इसे बंद कराने में पीछे नहीं हटूंगा।

सन 1865 ई० का ऐसा समय आया कि इसी महापुरुष ने घोर पाप गुलाम-प्रथा को बंद करवा दिया।

४. सूरज उगने लगा

अब्राहम लिंकन जिसके लिए अमर वंदनीय हैं, वह घटना उनके बाइस-तेइस वर्ष की उम्र में घटने लगी। वे जबसे होश सम्हाले तब से देखते थे कि अमेरिका में गुलाम-प्रथा है। अमेरिका के मूल निवासी जो काले होते हैं और जिन्हें रेड इंडियन कहा जाता है और ब्रिटेन के अंग्रेजों द्वारा अफ्रीका से लाये गये, चालीस लाख नीग्रो, वे भी काले होते हैं, उन्हें गुलाम बनाकर रखा जाता था।

अंग्रेज लोग दक्षिणी अमेरिका के जंगलों को कटवाकर इन्हीं काले लोगों से खेती करवाते थे। इन्हें समय पर बेचते थे, पुरस्कार में देते थे और इनके साथ घोर अत्याचार करते थे। नीग्रो और रेड इंडियनों पर गोरों का अत्याचार देखकर युवक अब्राहम लिंकन का हृदय विदीर्ण हो जाता था। उनके मन में यह बात बराबर उठने लगी कि इस अत्याचार को समाप्त करने के लिए कुछ करना चाहिए और पूरे अमेरिका में गुलाम-प्रथा समाप्त होना चाहिए। अब्राहम लिंकन का यह अमर वाक्य है—If the Negro is a man, why then my ancient faith teaches me that "All Men Are Equal" and that there can be no moral right in connection with one man's making a slave of another. अर्थात यदि नीग्रो मनुष्य हैं, तो मेरा प्राचीन विश्वास मुझे शिक्षा देता है कि सभी मनुष्य मूलत: एक समान हैं, अतएव नैतिक विधान मुझे यह आदेश नहीं देते हैं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को गुलाम बनाये।

अभी तक अब्राहम लिंकन लकड़ी चीरकर अपना गुजर करते थे। न्यू सलेम गांव में इस बात के लिए वे प्रसिद्ध हो चुके थे कि वे गांव में सबसे लंबे हैं और हंसमुख तथा व्यवहारकुशल हैं। वे इस गांव में जिसके सहारे से आये थे वह ऑफेट नाम का व्यक्ति था। उसका इस गांव में एक स्टोर था। उसकी कमाई अच्छी थी। उसने एक दिन अब्राहम लिंकन से कहा—मित्र एबी, तुम लकड़ी चीरने के चक्कर में कब तक रहोगे? तुम अच्छे शिक्षित युवक हो। तुम्हारे पास डिग्री नहीं है, परंतु अच्छा दिमाग है। तुम्हारी जनसंपर्क-कला भी अच्छी है। तुम्हारे में नेता के गुण हैं।

उक्त बातें सुनकर अब्राहम लिंकन भड़क उठे। उन्होंने कहा—मित्र! तुम क्या बात करते हो? इन राजनीतिक नेताओं से तो मुझे घृणा है। इन नेताओं को मैं देखता हूं कि ये जनता को आपस में लड़ाते हैं और देश को दुर्बल बनाते हैं। जो अमेरिका के मूल निवासी हैं उन रेड इंडियनों या अश्वेत अफ्रीकियों को मार-पीटकर गुलाम बनाते हैं। उन्हें बाजारों में बेचते हैं, रिश्तेदारों को गिफ्ट रूप में देते हैं। उन्हें जड़ वस्तु की तरह ये बेचते हैं और पीटते हैं। जो लोग इस विपत्ति से बचना चाहते हैं, वे जंगलों में मारे-मारे फिरते हैं।

ऑफेट ने कहा—एबी मित्र! यही तो तेरे में नेता बनने के गुण हैं। तू जिस तरह गुलामों की और उनको चूसनेवाले नेताओं की सच्चाई समझता है और साथ-साथ उन पीड़ितों के प्रति तेरे मन में करुणा है, यही अच्छे नेता के लक्षण हैं। हृदयहीन नेता तो बहुत हैं, जिनका उद्देश्य है कुर्सी पाना और उसमें चिपके रहना और बड़े नेताओं की चापलूसी करना। उनको न जनता के दुख-दर्द से मतलब है न उनके निवारण की चिंता से।

ऑफेट ने कहा—मैं अपने स्टोर में तुम्हें नौकरी देता हूं। एबी मित्र! लकड़ी चीरना बंद करो। मेरे स्टोर का हिसाब-किताब देखो। मैं तुम्हें पंद्रह डालर मासिक दूंगा। साथ-साथ तुम कानून की किताबें पढ़ो; क्योंकि नेता बनने के लिए कानून जानना जरूरी है। जब पांच फुट ऊंचा लड़का 'डगलस' राजनीति में उतर सकता है तब साढ़े छह फुट जवान अब्राहम लिंकन क्यों नहीं उतर सकता।

ऑफेट की उक्त बातें सुनकर अब्राहम लिंकन खुश हो गया और वह तीन काम करने लगा—स्टोर का हिसाब-किताब देखना, कानून की किताब पढ़ना और रानजीति के लिए जनसंपर्क करना।

9. राजनीति में प्रवेश

ऑफेट ने अब्राहम लिंकन का न्यू सलेम डिबेटिंग सोसाइटी से साक्षात करवाया। सोसाइटी के सदस्य लिंकन के उदार विचारों से अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने शीघ्र ही लिंकन को अपना नेता मान लिया। कुछ ही दिनों में न्यू सलेम में लिंकन की गूंज हो गयी। वह जिधर निकलता, लोग उसका आदर करते। न्यू सलेम में रहते एक वर्ष भी नहीं बीता था कि ऑफेट और सोसाइटी के सदस्यों ने लिंकन को 'इलीनॉइस' राज्य विधानसभा की सदस्यता के लिए चुनाव में खड़ा कर दिया।

लिंकन की चुनाव में जीत तो नहीं हुई, परंतु उनका जनसंपर्क बढ़ा और आगे के लिए भूमिका तैयार हुई। लिंकन न्यू सलेम में छह वर्षों तक रहे। इसी अवधि में लिंकन ने अपनी शिक्षा-शक्ति मजबूत की, कानून पढ़े, साहित्य-शक्ति प्राप्त की और राजनीति-पथ प्रशस्त किया।

इधर ऑफेट के स्टोर की स्थिति गिरने लगी। लिंकन ने अपने एक मित्र के साथ स्टोर चलाने के लिए ले लिया, किंतु उसकी दशा बिगड़ती गयी। इसी बीच लिंकन का पार्टनर मर गया। अतएव स्टोर का पूरा भार लिंकन पर आ गया। लिंकन से वह संभल न सका। स्टोर बंद हो गया और उससे सम्बन्धित ग्यारह सौ डालर का कर्ज लिंकन के सिर पर आ गया। यह लिंकन के ऊपर आर्थिक संकट था, परंतु उन्होंने इसे प्रसन्नता से स्वीकारा। सन 1833 ई० में

लिंकन ने आर्थिक क्षतिपूर्ति के लिए लोहारगीरी करने को सोचा, परंतु मित्रों के सहयोग से उसे पोस्टमास्टर का पद मिल गया। उसमें तेरह डॉलर महीने में वेतन मिलता था। पैसा बहुत कम था, कर्ज चुकाना था। अतएव उसने नौकरी के साथ कई काम करना चालू किया। वह कभी रेल की पटरियों को अलग करने का काम करता, कभी किसी के खेत में फसल उगाने और काटने का काम करता, कभी किसी फैक्ट्री में रात की ड्यूटी करता, कभी क्षेत्रीय समाचार पत्रों के दफ्तरों में काम करता। लिंकन गरीब घर में जन्में थे, साथ-साथ मनुष्य जो काम करते हैं, मनुष्य होने से हम भी कर सकते हैं, यह उनका विचार था, अतएव उन्हें किसी काम में लज्जा नहीं थी।

सन 1833 ई० की बात है। भिग पार्टी नाम से एक विचारपूर्ण दल अस्तित्व में आया था। उस पार्टी के राष्ट्रीय नेता थे 'जॉन स्टुआर्ट'। वे न्यू सलेम में एक अच्छे प्रत्याशी की खोज में आये थे, क्योंकि आगे 1834 ई० में राज्य विधानसभा का चुनाव होना था। उन्होंने लिंकन की प्रशंसा सुन रखी थी। लिंकन से मिलकर उनको अपनी पार्टी का प्रत्याशी चुना और उन्होंने लिंकन को कानून का गहरा अध्ययन करने की राय दी।

शिक्षा की कमी, डिग्री का अभाव, धनाभाव आदि के कारण लिंकन में आत्मविश्वास की कमी बराबर बनी रही, परंतु अपनी सत्यता और गरीबों के प्रति सहृदयता तथा मानवमात्र के प्रति करुणा की भावना के कारण वे आगे बढ़ते रहे। अबकी वे चुनकर राज्य विधानसभा में पहुंच गये। राजनीति में यह उनकी पहली जीत थी। इसके बाद लिंकन का मनोबल बढ़ गया और वे लगन से कानून की पढ़ाई करने लगे।

लिंकन गुलामों की मुक्ति और गरीबों के कल्याण के लिए राजनीति में आये थे। वे गरीबी के भुक्तभोगी थे और समझते थे कि संपन्न देश में भी किस तरह गरीबों की दुर्दशा होती है।

10. जो घर फूंके आपना

1776 ई० से पहले ग्रेट ब्रिटेन के अंग्रेजों द्वारा दक्षिण अफ्रीका से नीग्रो अमेरिका में लाकर और उन्हें गुलाम बनाकर उनसे खेती करवायी जाती थी। देश में ग्यारह प्रतिशत आबादी नीग्रो आदिवासियों की थी। 1776 ई० तक इन पर ब्रिटेन का शासन था। 1776 ई० में इन्हें स्वतंत्रता मिली और काले और गोरे लोगों को मिलाकर अमेरिकी संघ का निर्माण हुआ। परंतु संविधान में इनके साथ भेदभाव रखा गया। गोरे चाहते थे कि कालों को समान अधिकार न दिया जाये और अमेरिकी गोरों को यह छूट हो कि वे कालों को गुलाम बनाकर रखें। अमेरिकी संघ के सदस्य होने पर भी काले लोग गोरों की गुलामी

में रहते थे। इसके विरुद्ध थोड़ा-थोड़ा कहीं मंद स्वर उठता था, परंतु इसको लेकर कोई अपने हाथों में लुआठी ले अपना घर फूंककर आगे आने वाला न था। इतने में अब्राहम लिंकन नाम का एक गरीब घर का युवक आगे आया और वह अपना घर फूंककर आगे बढ़ने का साहस किया।

11. क्रांति की घोषणा

अब्राहम लिंकन भिग पार्टी द्वारा सन 1834 ई० में राज्य विधानसभा में पहुंचे और उन्होंने घोषणा कर दी कि उनकी पार्टी उन सभी कानूनों और प्रवृत्तियों का विरोध करेगी जिनके आधार पर मनुष्य के द्वारा मनुष्य को गुलाम बनाया जाता है और किसी प्रकार शोषण किया जाता है। उनकी भिग पार्टी अल्पमत में थी और विरोधी डेमोक्रेटिक पार्टी बहुमत में थी। उसके सदस्य भिग पार्टी के सदस्यों को सदन में टिकने नहीं देते थे। अमेरिका में सत्तासी (87) प्रतिशत गोरे थे और केवल तेरह (13) प्रतिशत काले; परंतु गोरे समझते थे कि काले लोग गोरों की सेवकाई और गुलामी करने के लिए पैदा हुए हैं। उस समय अमेरिका में औद्योगिक प्रगति नहीं थी। केवल कृषि पर ही सारी उन्नति निर्भर थी, और कृषि कार्य काले लोगों से करवाया जाता था। काले लोगों के खून-पसीना की कमाई पर गोरे गुलछर्रे उड़ाते थे और उन्हें गुलाम बनाकर रखते थे। अतएव गोरे सोचते थे कि यदि गुलाम-प्रथा उठा दी जायेगी तो खेत में काम कौन करेगा। अधिकतम गोरे नहीं चाहते थे कि गुलामी समाप्त कर दी जाये, किंतु लिंकन ने सत्य पर विश्वास रखकर गुलाम-प्रथा के विरोध में अपना युद्ध शुरू कर दिया।

12. वकालत और राजनीति

भिग पार्टी के नेता तथा प्रसिद्ध वकील 'जॉन टी. स्टुआर्ट' की सलाह से अब्राहम लिंकन वकालत पढ़ने लगे थे और सन 1837 ई० में उन्हें वकालत की डिग्री मिल गयी। वे इसी समय न्यू सलेम छोड़कर स्प्रिंगफील्ड चले आये और जान टी. स्टुआर्ट के साथ वकालत करने लगे। जब वे न्यू सलेम से किराये के एक घोड़े पर अपने सामान लादकर स्प्रिंगफील्ड पहुंचे, तो जोशुआ स्पीड नाम के वकील के घर के सामने आ खड़े हुए। उन्होंने उनसे पूछा कि यहां एक कमरे का मकान तथा पलंग-बिस्तर का किराया और मूल्य कितना होगा। जोशुआ स्पीड ने एक अंदाज बताया तो लिंकन हतप्रभ हो गये। उनके पास उतने रुपये नहीं थे। परंतु लिंकन के निर्मल मन और सरल बातचीत से वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कहा कि मेरा कमरा बड़ा है और बिस्तर बड़ा है और घर में केवल अकेला मैं रहता हूं। यदि आप मेरे बिस्तर पर मेरे साथ-साथ रह सकते हैं तो मैं आपको बेड पार्टनर बनाने के लिए तैयार हूं! लिंकन

गद्‌गद हो गये। उन्होंने पूछा कि आपका सामान कहां है? लिंकन ने कहा कि सामने किराये का घोड़ा खड़ा है और उसके ऊपर लदा सामान मेरा ही है। दोनों हंसने लगे और दोनों घोड़े से सामान उतारकर लिंकन जोशुआ स्पीड के घर पर उनके साथ रहने लगे।

लिंकन 1837 ई० से जॉन टी. स्टुआर्ट के साथ उनका सहयोगी बनकर चार वर्ष तक वकालत करते रहे; और उनकी ही भिग पार्टी से राजनीति में आकर उसमें अपना आधार मजबूत करते रहे। इसके बाद उन्होंने स्टीफन टी. के साथ वकालत की। लिंकन ने 1844 ई० में अपना अलग कार्यालय स्थापित किया और एक छब्बीस वर्षीय वकील 'विलियम एच. हैंडरसन' को अपना सहयोगी बनाया। इस समय लिंकन पैंतीस वर्ष के थे। वकालत और राजनीति सगी बहनें हैं। वकालत करने वाला राजनीति में अच्छा काम कर सकता है। लिंकन की इस समय दोनों में प्रगति होती गयी; और उन्होंने अपने ऊपर लदे ग्यारह सौ डालर का कर्ज पूरा उतार दिया।

लिंकन राजनीतिक गोष्ठियों तथा सभाओं में भाग लेते। लोग गुलाम-प्रथा को मिटाने की बात करते, परंतु सामने कोई आने का साहस नहीं करता, क्योंकि सत्तासी (87) प्रतिशत गोरों की आबादी से ही वोट मिलना होता था। जिनमें अधिकतम लोग गुलाम-प्रथा बनाये रखना चाहते थे। विचारक सोचते थे कि धीरे-धीरे गुलाम-प्रथा तो मिटेगी ही। काले लोग स्वयं जागरूक होंगे और कभी अपना हक़ मांगेंगे। लिंकन का भी समय-समय से साहस टूटता, परंतु उनके मन के भीतर कुछ ऐसा बैठा था कि जितना शीघ्र हो गुलाम-प्रथा मिटना चाहिए।

13. अब्राहम लिंकन का विवाह

आरम्भिक जीवन में लिंकन की दो लड़कियों से मित्रता हुई परंतु उनसे विवाह न हो सका। 'मैरी टॉड' नाम की पांच फुट की एक सुंदर सुशिक्षित युवती थी जो सम्भ्रांत घर की लड़की थी। उससे उनका 14 नवम्बर, 1842 ई० में विवाह हुआ। 'मैरी टॉड' बन-ठन कर रहने वाली रजोगुणी लड़की थी, और लिंकन राग-रंग से उदासीन और गरीबों के उद्धार के लिए तपस्यारत थे। किंतु मैरी टॉड लिंकन की प्रतिभा, साहस और समाज-सेवा के उत्कट उत्साह के गुणों से उन पर न्यौछावर थी। इसीलिए वह अपने रजोगुण को दबाकर लिंकन का सहयोग करती रही और छाया की तरह उनके पीछे चलती रही।

विवाह के पहले लिंकन ने ग्लोब टार्बन में दो कमरों का एक छोटा मकान खरीद लिया था। उसी में दोनों प्राणी रहते थे। मैरी टॉड ने अपने मां-बाप के घर में कभी अपने हाथों से मोटा काम नहीं किया था, परंतु लिंकन के साथ

रहकर घर का सारा काम खुद करती थी, क्योंकि लिंकन के पास इतना पैसा नहीं था कि नौकर रख सकते। मैरी टॉड ने समझ लिया था कि लिंकन के साथ इसी ढंग से रहा जा सकता है। वह समझती थी कि जो दुनिया का बड़ा काम करना चाहता है वह राग-रंग में नहीं डूबता।

मैरी टॉड से दस वर्षों में चार बच्चे पैदा हुए। एक मर गया। तीन बच्चे जीवित रहे। लिंकन 1844 से 1861 ई० तक इसी घर में रहे। 1861 ई० में राष्ट्रपति का चुनाव जीतने के बाद वे वाशिंगटन गये। इन सत्तरह वर्षों में लिंकन और मैरी टॉड एक दूसरे को अच्छी तरह समझकर आपस में सामंजस्य स्थापित कर चुके थे।

मैरी टॉड ने अब्राहम लिंकन के विचारों का सदा आदर किया और उनकी भावनाओं को अपनी तरफ से कभी ठेस नहीं लगने दी। उन्होंने अपनी आवश्यकताओं को घटाया। वे एक भारतीय पतिव्रता महिला की तरह पति की उद्देश्य-प्राप्ति के पीछे अपना सब कुछ न्यौछावर कर छाया की तरह उनके पीछे लगी रहीं। मैरी टॉड को जो बन-ठनकर रहने और खूब खर्चकर ऐश्वर्य संवारने का लोभ था उसे उसने सत्तरह वर्षों तक दबाकर रखा और वह पति के देश-सेवा रूपी यज्ञ में अपनी इच्छा का हवन करती रही। कहा जाता है कि उसने लिंकन के राष्ट्रपति हो जाने पर अपना शौक पूरा किया था।

14. गुलाम-प्रथा समस्या

गुलाम-प्रथा मिटाने की चर्चा राजनेताओं में होती थी, परंतु कोई पार्टी खुलकर उसके विरोध में कहने का साहस नहीं करती थी। जिस पार्टी से लिंकन इस समय राज्य-विधानसभा के सदस्य थे, वह भिग पार्टी भी गुलाम-प्रथा के विरोध में सीधे बोलने की हिम्मत नहीं करती थी। सीधा इंकलाब करने से अमेरिकी संगठन टूट जाने का खतरा था, क्योंकि पूंजीपति जो गुलामों के खून-पसीने से अपना ऐश्वर्य संवार रहे थे, वे कालों को गुलाम बनाये रखने के हठ में थे और उन्हीं का बहुमत था।

उक्त बातों पर ध्यान रखकर लिंकन ने भी एक बार वक्तव्य जारी किया था कि अमेरिका में जहां गुलाम-प्रथा है, उसे वहीं रहने दिया जाय। उसे देश के अन्य स्थानों पर न बढ़ने दिया जाय। एक दिन यह अपनी मौत मर जायेगी। यह भी किया जा सकता है कि सरकार एक फंड ऐसा स्थापित करे कि गुलामों के मालिकों को धन देकर गुलामों को गुलामी से मुक्त कराया जाये।

15. लिंकन कांग्रेस के सदस्य

अब्राहम लिंकन सन 1846 ई० में कांग्रेस की सदस्यता के लिए चुन लिये गये। वे चुनाव में जीत गये। लिंकन स्प्रिंगफील्ड में निजी घर में परिवार सहित

रहकर वकालत करते थे। परिवार को स्प्रिंगफील्ड में छोड़कर लिंकन को वाशिंगटन जाना पड़ा। वे वहां कांग्रेस के सदस्यों को मिलने वाले निवास में रहते थे और समय से स्प्रिंगफील्ड आकर परिवार में रह लेते थे।

सन 1847 ई० से लिंकन वाशिंगटन में रहने लगे थे। उन्होंने सोचा था कि वाशिंगटन में रहने पर हमारा दायरा बढ़ जायेगा। परंतु अनुभव उलटा हुआ। उन्होंने यहां राष्ट्रीय राजनीति का महासागर देखा, जहां एक-से-एक दिग्गज नेता हैं। उन्हें दूसरों के लिए अवकाश ही नहीं है। लिंकन को न्यू सलेम और स्प्रिंगफील्ड में जो आनंद मिला वह वाशिंगटन में नहीं मिला।

लिंकन की पत्नी मैरी टॉड की रजोगुणी स्वभाव प्रवृत्ति उभड़ आयी। कीमती कपड़े पहनना, घर की साज-सज्जा संवारना, बच्चों पर खुलकर खर्च करना और इन सबको लेकर सहेलियों में अपनी डींग हांकना, इन सबका प्रोग्राम उनके मन में बन रहा था। परंतु थोड़े दिनों में उनको यह समझ में आ गया कि यह सब इस त्यागी पति के साथ रहकर संभव नहीं है। लिंकन का सिद्धांत था—सरकारें जनता की गाढ़ी कमाई से चलती हैं। इसलिए सरकारी धन पर जनता का अधिकार है, राजनेता का नहीं।

मैरी टॉड ने बहुत जल्दी स्वयं को पति के त्यागी स्वभावानुसार वाशिंगटन में भी बना लिया।

16. युद्ध का विरोध

अब्राहम लिंकन सन 1847-1849 ई० में वाशिंगटन में रहे। उस समय अमेरिका के राष्ट्रपति मिस्टर पोक थे। उन्होंने 1846 ई० में मैक्सिको देश पर आक्रमण किया था। अमेरिका चाहता था कि कैलीफोर्निया, नवादा, ऊटा, एरीजोना, न्यू मैक्सिको, कोलोरोडो, वियोमिंग आदि को मैक्सिको के कब्जे से छुड़ा लिया जाये। युद्ध में रक्तपात होता है और वही हुआ। युद्ध को लेकर अमेरिका में दो मत बने। एक मत मानता था कि अमेरिका ने मैक्सिको से युद्ध करके अच्छा काम किया। किसी भी देश का अपना स्वाभिमान है कि हानि पहुंचाने वाले देश को सीख दे और जो उसे उचित लगे शत्रुपक्ष से ले ले। दूसरा पक्ष था कि मैक्सिको से युद्ध करके बुरा किया गया। व्यर्थ में जवानों का खून बहाया गया। भिग पार्टी जिसमें लिंकन थे उसका युद्ध-विरोधी मत था। लिंकन ने सदन में इस बात को बड़े जोश-खरोश से उठाया। सभा में बड़ा हंगामा हुआ। लिंकन ने राष्ट्रपति पोक का सदन में घोर विरोध एवं कटु आलोचना की कि व्यर्थ में अमेरिकी जवानों को युद्ध में झोंककर उनका खून-खराबा किया गया।

सरकार ने संसद में बहस करके उसे पारित करने के लिए युद्ध सम्बन्धी प्रस्ताव रखा, जिसका उद्देश्य था मैक्सिको पर हमला उचित मानना और इसके

लिए मैक्सिको-सरकार को पूरी तरह दोषी ठहराना। भिग पार्टी ने प्रस्ताव के विरोध में मत दिया। परंतु प्रस्ताव गिरा नहीं, अपितु पास हो गया। लेकिन इसको लेकर पूरे देश में भिग पार्टी बदनाम हो गयी। अमेरिका पूरा देश प्राय: यह स्वीकारता था कि मैक्सिको पर उसका हमला करना उचित था। मीडिया ने अमेरिका में यह संदेश फैलाया कि भिग पार्टी का युवा नेता अब्राहम लिंकन अर्धविक्षिप्त है जो वह इस युद्ध के सम्बन्ध में अमेरिका को ही दोषी सिद्ध कर रहा है।

लिंकन पूरे देश में बदनाम हो गये। उनके चुनाव-क्षेत्र की जनता भी उनके विरुद्ध हो गयी, और उसने सोच लिया कि अब दुबारा लिंकन को नहीं चुनना है। सन 1849 ई० में पुन: चुनाव हुआ। पार्टी ने लिंकन को खड़ा किया। लिंकन हार गये। पार्टी के लोग तथा स्वयं लिंकन हतप्रभ हो गये। जनता इतना विरुद्ध हो जायेगी, यह उन्हें गुमान नहीं था। लिंकन वाशिंगटन छोड़कर अपने गृहनगर स्प्रिंगफील्ड आ गये और राजनीति को छोड़कर वकालत करने लगे।

स्प्रिंगफील्ड में भी जनता लिंकन के विरुद्ध में बोलती, लिंकन को देशद्रोही भी कहती थी। लिंकन के सहयोगी वकील बिली हेंडरसन दुखी हुए और वे स्प्रिंगफील्ड की जनता को समझाने का प्रयास करते थे। वे लिंकन के पक्षधर थे।

''बिली ने लिंकन से कहा—तुमने यह क्या किया लिंकन, अपने आप को जनता की नजरों में गिरा लिया?

''मैंने वही किया जो मेरी अंतरात्मा ने मुझसे करने को कहा।

''लेकिन, लिंकन! यह राजनीति है। राजनीति में शब्द देते समय दस बार विचार किया जाता है। केवल उन्हीं बातों को शब्द देते हैं जो जनता को अच्छी लगे। जो जनता की नजरों से गिरा दे, ऐसे शब्द नहीं कहे जाते।

''मैं इस तरह चालाकी से शब्दों का चयन नहीं कर सकता। अपने असली चेहरे पर एक और चेहरा चढ़ाना मुझे नहीं आता। मैं तो केवल एक ही चेहरा रखता हूं और उसी को सबको दिखाता हूं, फिर किसी की इच्छा, भला माने या बुरा।

''लिंकन के ये शब्द सुनकर बिली हेंडरसन चुप हो गया। उसे लगा कि उसने लिंकन की दुखती रग दुखा दी है। थोड़ी देर वह यह भूल गया था कि लिंकन दूसरे राजनीतिज्ञों से बिलकुल अलग है। सच पूछो तो वह राजनीतिज्ञ है ही नहीं। वह एक सीधा और सरल इंसान है। राजनैतिक छलकपट की चादर वह ओढ़ ही नहीं सकता।

''शायद मैं कुछ अधिक कह गया—हेंडरसन थोड़ी चुप्पी के बाद बोला—माफी चाहता हूं।

''नहीं करूंगा माफ—लिंकन ने आत्मीयता से कहा—तूने मुझे समझने में भूल क्यों की? तू मेरा अंतरंग साथी है। मैं उन साथियों को भी कभी माफ नहीं कर सकता जो मेरे बिलकुल अपने होकर भी मुझे समझने में भूल कर देते हैं।

''हेंडरसन चुप रहा।

''फिर लिंकन ने हेंडरसन का हाथ पकड़ लिया और बोला—'बिली! अमेरिका की जनता मुझे समझे या न समझे—मैं अपने आपको अच्छी तरह समझता हूं। मुझे तनिक भी अफसोस नहीं है इस बात का कि लोगों को मेरे विचार समझ में नहीं आये। मेरे विचार कड़वे और चुभने वाले जरूर हैं। उनमें से सच्चाई की लपटें निकलती हैं जिन्हें लोग सह नहीं पाते, इसलिए तिलमिलाकर मेरे बारे में जल्दीबाजी में कोई राय बना लेते हैं। मुझे जल्दी नहीं है। मुझे विश्वास है कि मेरे यही विचार लोगों का और देश का भला करेंगे। एक दिन वे लोगों की समझ में भी जरूर आ जायेंगे। भले ही तब तक इतनी देर हो चुकी हो कि मैं लोगों के बीच मौजूद न रहूं।

''तू सच कह रहा है—हेंडरसन ने लिंकन के दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ते हुए कहा—मैं समझ गया, लोग भी एक दिन समझ लेंगे.....पर ये दिल तोड़नेवाली बातें न कर, चल बाहर चलते हैं। बाहर मौसम बहुत सुहावना है। इस तरह बातें करते हुए बिली हेंडरसन लिंकन को केबिन से बाहर ले आया। बाहर बड़ी सुहावनी हवा चल रही थी। आकाश में बादल थे। दोनों हाथों में हाथ डाले कोर्ट के अहाते से बाहर निकलते देखे गये।''[1]

17. अगला चुनाव, जनरल टेलर राष्ट्रपति

सन 1848 ई० आया। राष्ट्रपति का चुनाव होना था। मैक्सिको को मात देने में अमेरिका के जनरल टेलर देश में हीरो मान लिये गये थे। वह गुलामी-प्रथा का भी पक्षधर था। उसके घर की सेवा में गुलाम रहते थे। इस प्रकार भिग पार्टी का जनरल टेलर से विचार न मिलने पर भी पार्टी ने उसे ही अपना प्रत्याशी चुना। लिंकन ने पार्टी की तरफ से उसके समर्थन में जगह-जगह भाषण दिये। जनता ने लिंकन को पसंद नहीं किया। इसलिए वाशिंगटन, शिकागो, न्यूयार्क आदि नगरों में लिंकन को बोलते समय जनता का कोप-भाजन बनना पड़ा, परंतु जनरल टेलर को लोगों ने भारी समर्थन दिया। जनरल टेलर अमेरिका के राष्ट्रपति चुन लिये गये। लिंकन अपनी पार्टी की जीत समझकर संतुष्ट हुए।

---

1. **अब्राहम लिंकन, पृ० 52-53, एम० पी० कमल, प्रकाशक-राजा पॉकेट बुक्स, बुराड़ी दिल्ली। इसी पुस्तक के आधार पर यह लिखा गया है।**

18. लिंकन दुर्व्यसन-मुक्त

लिंकन वाशिंगटन की यात्रा में थे। रथ पर केंटुकी का एक धनी व्यक्ति भी बैठा था। उसने कुछ समय बाद तंबाकू निकाला और पास में बैठे अजनबी लिंकन को उसे देना चाहा। लिंकन ने विनम्रता से कहा—नो सर, आई नैवर चिऊ। नहीं सर, मैं कभी तंबाकू नहीं खाता।

कुछ समय में उसने सिगार निकाला और बड़े प्रेम से लिंकन को देना चाहा। लिंकन ने सिगार भी सादर लौटा दिया।

एक जगह कोच का घोड़ा बदलना था। कोच रुका। उस सज्जन ने शराब के दो प्याले तैयार किये और बड़े प्रेम से एक प्याला लिंकन को देना चाहा। लिंकन बड़े संकोच में पड़ गये, परंतु अत्यंत विनम्रता से कहा—सर, मैं कभी भी इसको पीया होता तो अवश्य ले लेता। आपको अबकी बार भी मुझे क्षमा करना पड़ेगा।

वे सज्जन लिंकन से बहुत प्रभावित और गद्‌गद हुए। उस सज्जन ने कहा—ऐ अजनबी! अब जीवन में शायद तुमसे मिलना न हो। परंतु तुम बड़े बुद्धिमान और विलक्षण हो। तुम्हारी अपनी खास हैसियत है।

लिंकन ने अपनी आठ वर्ष की उम्र में एक बतख का शिकार किया था। उसके बाद उन्होंने कभी किसी जानवर को नहीं मारा। वे प्राणिमात्र पर दयालु थे।

केंटुकी ही लिंकन का जन्मस्थान था और उसी जगह का उक्त धनी व्यक्ति था। परंतु जब तक कोई परिचय न पूछे या स्वयं के लिए आवश्यक न हो तब तक लिंकन अपना परिचय नहीं देते थे। अतएव अपना परिचय दिये बिना लिंकन उन सज्जन से अलग हुए।

मनुष्य का सबसे बड़ा धन उसका जीवन है। जो उसे बुराइयों से बचाकर रखता है उसे कभी पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

19. मैरी टॉड की लिंकन को उत्तम राय

सन 1849 ई० में लिंकन को ओरगन का सचिव बनाने का प्रस्ताव आया। ओरगन तत्काल ही नया राज्य बनने वाला था। अतएव राज्य बन जाने पर लिंकन ओरगन के गवर्नर हो जाते, जो अमेरिका में महत्त्व का पद है।

लिंकन की पत्नी मैरी टॉड ने उन्हें उसे स्वीकार करने से रोक दिया, और कहा कि आपकी योग्यता राष्ट्रीय नेता की है। अभी तत्काल राष्ट्रीय राजनीति में स्थान नहीं मिल पा रहा है तो कोई हर्ज नहीं है। अभी आप मन लगाकर वकालत करें। जब समय अनुकूल आये तब राष्ट्रीय राजनीति में आगे बढ़ें। राज्य के पद में उलझने से राष्ट्रीय राजनीति बाधित होगी। लिंकन ने सचिव पद अस्वीकार दिया।

20. पांच वर्ष वकालत

लिंकन अब वकालत कर अच्छी कमाई करते थे, अच्छे साहित्य का अध्ययन करते थे और देश तथा मानव-कल्याण को केंद्र में रखकर राष्ट्रीय राजनीति पर विचार और अनुसंधान करते थे। समीक्षकों ने लिखा है कि लिंकन के पांच वर्ष तक राजनीति से अलग रहकर उस पर अनुसंधान ने उन्हें राष्ट्रीय स्तर का उच्च नेता बना दिया। इन पांच वर्षों में जो उनके निकट रहे वे हैं वकालत के सहयोगी वकील मिस्टर हेंडरसन। उन्होंने कहा था कि इन पांच वर्षों में लिंकन ने खूब अध्ययन किया, परंतु विद्वान बनने के लिए नहीं, अपितु सही ज्ञान ग्रहण करने के लिए। वे अधिक बाइबिल तथा अच्छे साहित्य का अध्ययन करते थे। वस्तुत: वे पढ़ने से अधिक मनन करते थे।

लिंकन और मिस्टर हेंडरसन दोनों वकालत करते थे और दोनों को जो मिलता था उसे आधा-आधा बांट लेते थे। ये दोनों हिसाब नहीं लिखते थे, परंतु दोनों के दिल इतने साफ थे कि दोनों को जो आमदनी और खर्च होते थे उसे समझकर आधा-आधा बांट लेते थे। एक महत्त्वपूर्ण मुकदमें की जीत में लिंकन को पंद्रह हजार डालर का मेहनताना मिला, जो उस समय की बड़ी संपत्ति थी। लिंकन ने तुरंत हेंडरसन के पास पहुंचकर साढ़े सात हजार की गड्डी उनके हाथों में थमा दी और इस खुशखबरी को बताने के लिए अपनी पत्नी के पास पहुंचे। लिंकन वकालत के समय अपने मुवक्किल को जिताने का घोर प्रयास करते थे। उनके उद्देश्य में पैसा दूसरे स्थान पर था।

21. झूठे मुकदमे नहीं लड़ते थे

महात्मा गांधी जी की तरह अब्राहम लिंकन झूठे मुकदमे नहीं लड़ते थे। जब एक मुकदमे के मुवक्किल को उन्होंने जाना कि वह झूठ बोलता है और झूठा मुकदमा लड़ने के लिए मुझे दिया है, तब वे मुवक्किल से नाराज हो गये। जब मुकदमे में पुकार हुई और मुवक्किल दौड़कर लिंकन से कहा कि साहब, पुकार हुई है, आप शीघ्र कोर्ट में चलें, तब लिंकन ने कहा कि जज से कह दो कि मेरे पास समय नहीं है। मेरे हाथ गंदे हैं मैं उन्हें धोने जा रहा हूं। लिंकन जज के सामने नहीं गये और मुकदमा खारिज हो गया। मुवक्किल खीजकर चला गया।

एक बार लिंकन ने अपने मुवक्किल की झुठाई जान जाने पर उसे पत्र लिखा कि तुम अपना मुकदमा वापस ले लो, अन्यथा तुम्हारे पैसे नष्ट होंगे और मुकदमा भी हार जाओगे।

विधवाओं, अनाथों, गरीबों के मुकदमें में कई बार लिंकन जज के सामने इतने भावुक हो जाते थे कि उनकी दयनीय दशा पर पूरा भाषण ही दे डालते

थे। ऐसी दशा में जज लिंकन की दयालुता और सत्य की पक्षधरता पर दहल जाते थे।

एक विधवा, जिसके पुत्र की भी हत्या हो गयी थी, उसका मुकदमा हार जाने की स्थिति में आ गयी, क्योंकि गवाह नहीं मिल रहा था। अब्राहम लिंकन उसकी हमदर्दी में अपना लेक्चर देते हुए रो पड़े। जज दंग रह गया और उसने मुकदमे को नये सिरे से जांचकर विधवा को न्याय दिया। इस मुकदमे में लिंकन ने नि:शुल्क पैरवी की थी।

लिंकन अपनी इसी ईमानदारी के कारण अच्छे वकील होकर भी संपत्ति नहीं इकट्ठी कर सके थे, परंतु उनकी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति तो होती ही थी। वस्तुत: उनके पास अतुल आत्मिक धन था।

वादी-प्रतिवादी का मुकदमा कोर्ट में चल रहा था। लिंकन समझते थे कि ये व्यर्थ लड़ रहे हैं। इनकी लड़ाई में मन की मलिनता ही कारण है। अतएव उन्होंने दोनों को बुलाकर अपने कमरे में बैठाया और दोनों को समझाया कि आप लोग अपने धन और मन की बरबादी न करें, मुकदमा उठा लें और समझौता कर लें। परंतु वे दोनों एक-दूसरे से तने हुए थे और परस्पर बात नहीं करते थे।

लिंकन ने कहा, ''आप लोग आपस में बात करें। मैं थोड़े समय के लिए दूसरा काम देख लूं।'' लिंकन कमरे से निकलकर और फाटक बंद कर ताला लगाकर चले गये। काफी देर तक नहीं आये। ये दोनों सज्जन धीरे-धीरे एक-दूसरे की तरफ उन्मुख हुए, बात करने लगे और घुलमिल गये। बहुत देर के बाद जब लिंकन ने ताला खोलकर कमरे में प्रवेश किया तो उन्होंने देखा कि वे दोनों आपस में हंस रहे थे। लिंकन के आते ही तीनों हंस पड़े।

उन लोगों ने कहा, ''आप अजीब वकील हैं। आपने हम लोगों को एक साथ बंद कर सारा समाधान कर दिया।''

सच है, सरल चित्त से संवाद सब समस्याओं का समाधान कर देता है।

22. स्टीफन ए. डगलस और अब्राहम लिंकन

सन 1850 ई० तक गुलाम-प्रथा को लेकर अमेरिका के दक्षिणी और उत्तरी हिस्सों में तनाव बढ़ गया। लिंकन के अलावा भी अनेक नेता तथा चिंतक थे जो गुलाम-प्रथा के विरुद्ध थे, किंतु दक्षिणी अमेरिका के गोरे जिनकी संपत्ति काले लोगों की मेहनत से खड़ी हुई थी वे गुलाम-प्रथा को मिटने नहीं देना चाहते थे। अधिकतर राजनेता ऐसे थे जिन्हें गुलाम-प्रथा के रहने या न रहने से कोई मतलब नहीं था। उनका मतलब था कि वे चुनाव में जीतकर कुर्सी पर आ जायें। ऐसे एक प्रसिद्ध नेता उभरकर सामने आ गये थे और ये डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता थे। इनका नाम था 'स्टीफन ए. डगलस'। ये पांच

फुट दो इंच ऊंचे थे, लिंकन से चौदह इंच नीचे। सन 1834 ई० में लिंकन और डगलस दोनों इलीनॉइस विधान सभा के सदस्य थे। दोनों को 1838 ई० में एक ही दिन इलीनॉइस के सर्वोच्च न्यायालय में वकालत करने के लिए स्वीकृति मिली थी। लिंकन की 1842 ई० में मैरी टॉड से शादी हुई थी। इसी मैरी टॉड से पहले डगलस शादी करना चाहते थे। 1846 में डगलस चुनकर अमेरिका के सीनेट में पहुंचे और लिंकन चुनकर प्रतिनिधि सभा में पहुंचे। 1858 ई० में लिंकन डगलस के विरुद्ध सीनेट की सदस्यता के चुनाव लड़े, किंतु हार गये और डगलस सीनेट के सदस्य बन गये।

अमेरिका के अधिकतम गोरे गुलाम-प्रथा के समर्थक थे, और उन्हीं से वोट लेकर नेताओं को कुर्सी पर आना था। इसलिए हर पार्टी के नेता अपना साफ मंतव्य जनता के सामने कह नहीं पाते थे। गुलाम-प्रथा के विरोध में सहृदय लोगों का जोर बढ़ रहा था। इसलिए नेता किंकर्तव्यविमूढ़ थे। जिस भिग पार्टी के लिंकन थे वह पार्टी भी साफ कहने में कतराती थी।

डेमोक्रेटिक पार्टी के जबर्दस्त नेता डगलस उभरे थे। उनका एक ही उद्देश्य था कुर्सी पर पहुंचना। इसलिए उनके विचारों में स्पष्टता नहीं थी। अतएव उनकी पार्टी के लोग ही उनसे असंतुष्ट थे। डगलस दक्षिणी अमेरिका के गोरों को जो गुलाम-प्रथा के पक्षधर थे खुश करने में लगे थे और उत्तरी अमेरिका में भी अपनी लोकप्रियता बनाने के चक्कर में थे।

डगलस और लिंकन समकालिक थे, समान वकालत पेशा वाले तथा राजनीति में दोनों उतरे थे। डगलस को गुलामों की चिंता नहीं थी और वे राजनीति में आगे बढ़ रहे थे। लिंकन ने उनके विरोध में अपना वक्तव्य देना शुरू किया।

गुलाम-प्रथा के संबंध में नीतियों का सामंजस्य न होने से भिग पार्टी टूट गयी। विचारक नेताओं को डेमोक्रेटिक पार्टी के विकल्प में एक पार्टी के गठन की चिंता हुई और उसके परिणाम में रिपब्लिकन पार्टी का गठन हुआ। इस पार्टी की नीति से लिंकन के विचारों का मेल था। अतएव जब इस पार्टी का निमंत्रण मिला तब लिंकन हर्षपूर्वक इसमें सम्मिलित हो गये। इससे उनके स्वाभिमान को आदर मिला। 1856 ई० में रिपब्लिकन पार्टी का पीटर्सबर्ग में सम्मेलन हुआ। यही अवसर था लिंकन का इस पार्टी में सम्मिलित होने का।

इसके पहले सन 1854 में तीन अक्टूबर को स्प्रिगफील्ड में डगलस एक विशाल सभा को सम्बोधित किये। लिंकन बाहर से खड़े सुन रहे थे। जैसे डगलस का भाषण समाप्त हुआ, लिंकन ने आगे बढ़कर सभा से अपील की कि कल इसी जगह पर डगलस के विधेयक के विरोध में मैं भाषण दूंगा, आप लोग अवश्य आवें।

दूसरे दिन सभा में भारी भीड़ हुई। लिंकन ने कहा कि डगलस की नीतियों से अमेरिका संघ कमजोर होगा। इनका विधेयक भ्रम फैलाने वाला है। सर्वत्र लिंकन की प्रशंसा हुई।

लिंकन ने गुलाम-प्रथा के विरोध में जमकर भाषण किया। आज तक अमेरिका में इस विषय पर किसी ने इतना साफ नहीं कहा था। लिंकन पारदर्शी सच्चे इंसान हैं इस तथ्य का आभास जनता को हुआ। लिंकन ने कहा था गुलाम व्यक्ति है, वस्तु नहीं। उसका अधिकार वैसा ही है जैसा हम गोरी चमड़ी वालों का है।

23. लिंकन हारे, पर उनके विचार जीते

सन 1858 ई० में सीनेट की सदस्यता के लिए डगलस डेमोक्रेटिक पार्टी से तथा लिंकन रिपब्लिकन पार्टी से चुनाव में उतरे। लिंकन के प्रति प्रसन्नता व्यक्त करते हुए डगलस ने कहा—लिंकन अपनी पार्टी का अच्छा और चोटी का नेता है, उसकी अच्छी प्रतिभा है, वे तथ्यों के अच्छे जानकार तथा पश्चिम अमेरिका के उच्चतम प्रवक्ता हैं, परंतु वे मुझे हरा नहीं पायेंगे।

डगलस और लिंकन के सात बार प्रभावशाली भाषण हुए जिनमें दस, बारह और पंद्रह हजार की जनता इकट्ठी होती थी। लिंकन छह घोड़ों के रथ पर चलते थे। उनके आगे बैंड बाजा बजता जुलूस चलता था। उनके भाषण सुनने के लिए जनता उमड़ पड़ती थी। भाषण के बाद चौराहों, दूकानों, जलपानगृहों, आफिसों आदि में लिंकन के उदार विचारों की चर्चा होती थी। समाचार पत्र लिंकन के विचारों से भरे रहते थे। चुनाव प्रचार में लिंकन ने डगलस को पछाड़ दिया था। लोग मानने लगे थे कि डगलस हार जायेंगे और लिंकन जीत जायेंगे। परन्तु डगलस जीत गये और लिंकन हार गये।

''अपनी हार की समीक्षा में लिंकन ने कहा था—यह ठीक है कि मैं सीनेट का चुनाव हार गया हूं। परंतु मुझे बड़ी खुशी है कि चुनाव प्रचार के बहाने मुझे गुलाम-प्रथा पर खुलकर बोलने का अवसर मिला। यदि मैं यह चुनाव न लड़ा होता तो शायद गुलामों के हित में बोलने का इतना अच्छा अवसर मुझे कभी न मिल पाता। यह हार अंत नहीं है। यह तो एक छोटी-सी शुरुआत है। अपने चुनाव अभियान के दौरान मैंने एक महत्त्वपूर्ण बात समझ ली है। लोगों को, देश को अब मेरी तरह साफ ढंग से बात कहने वालों की जरूरत है। अत: मैंने यह फैसला ले लिया है कि अब मैं वकालत के व्यवसाय को तुरंत समेट दूंगा, और पूरी तरह खुलकर राजनीति में सक्रिय हो जाऊंगा। मैंने जो बातें कही हैं, लोगों को वे बहुत पसंद आयी हैं। लोग इतने कठोर हृदय नहीं हैं जितना कि स्वार्थ की राजनीति करने वालों ने उन्हें बना दिया है। मैंने स्वार्थ से ऊपर उठकर राजनीति में उतरने का संकल्प लिया है। गरीबों, शोषितों और

गुलामी का त्रास झेलते इन असंख्य लोगों की बात को ऊपर तक पहुंचाने के लिए मैं अब पूरे मन से राजनीति करूंगा।''[1]

लिंकन के चुनाव में हार जाने से उनकी पार्टी तथा साथियों को धक्का लगा जो स्वाभाविक था। परंतु लिंकन ने अपने विवेक से उसे आत्मसात कर लिया और कहा—चुनाव में दो विरोधी पक्ष लड़ते हैं, तो एक को तो हारना ही है। हम चुनाव में अवश्य हारे हैं, किंतु हमारे विचार जनता में गये हैं। बड़े विचारों को सफल होने में समय लगता है।

24. सदन में द्वंद्व

लिंकन के चुनाव अभियान में दिये गये भाषण से जिनमें गुलाम-प्रथा पर मुख्य बात थी सदन में दो दल हो गये। एक लिंकन के समर्थन में और एक उनके विरोध में। डगलस ने लिंकन पर आरोप लगाया कि उन्होंने अपने भाषण से सदन में फूट डाल दी है। यह उनका अपराध है।

लिंकन ने उत्तर में कहा कि गुलामी को लेकर सदन विभाजित हुआ-जैसा लगता है, परंतु मेरा प्रश्न है कि क्या कुछ लोगों को स्वतंत्रता देकर और कुछ लोगों को गुलाम बनाकर राष्ट्र का शासन लंबे समय तक चलाया जा सकता है? मैं न सदन का विभाजन चाहता हूं और न अमेरिका संघ का विघटन। मैं चाहता हूं कि सदन एकबद्ध हो और अमेरिका संघ अखंड हो। बात है कुछ लोगों को गुलाम बनाकर उनका शोषण करने की। अब सदन यह निर्णय एकतरफा साफ करे कि गुलामी बनाये रखना है कि उसे पूरा समाप्त करना है। जो इस समस्या को बीच में उलझाये रखकर इसके आधार पर राजनीति करते हैं, वे देश के शत्रु हैं। वे गुलामों और उनके मालिकों, दोनों को भ्रम में रख रहे हैं।

लिंकन यह नहीं चाहते थे कि गुलाम-प्रथा के आंदोलन को लेकर अमेरिका संघ टूट जाये। क्योंकि एक बार देश टूट जाने पर उसका संभालना कठिन हो जायेगा; और गुलाम-प्रथा को तो आज नहीं, तो कल जाना ही है। लिंकन चाहते थे कि गुलाम-प्रथा समाप्त हो और अमेरिका की संघीय एकता बनी रहे। यही उनकी ऊंचाई थी।

कूपर यूनियन न्यूयार्क में लिंकन का महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक भाषण हुआ। इसमें बुद्धिजीवियों की भी संख्या थी। उन्होंने कहा—''दक्षिण के लोग गुलामी उन्मूलन को लेकर बहुत उत्तेजित हैं। शायद वे यह सोचते हैं कि भले ही संघ नष्ट हो जाये, पर गुलामी का कलंक अब मिट जाना चाहिए। वहीं उनके विरोधी उन्हें सबक सिखाने के लिए तैयार खड़े हैं। गुलाम-प्रथा को

---

1. वही, पृ० 74।

लेकर माहौल इतना गरम है कि यदि ये दोनों पक्ष उग्र हुए तो पूरा देश जल उठेगा। हम नहीं चाहते कि गुलामी-उन्मूलन का रास्ता कुछ इस तरह निकाला जाये कि संघ को क्षति पहुंचे और देश बर्बाद हो जाये। हम एक ऐसा रास्ता निकालना चाहते हैं कि अमेरिका के सत्तासी (87) प्रतिशत गोरे लोगों के दिलों में अपने तेरह (13) प्रतिशत काले रंग के भाइयों के प्रति सच्ची सहानुभूति पैदा हो और वे उन्हें गुलामी के चंगुल से मुक्त करके भाइयों की तरह गले से लगायें और फिर काले और गोरे दोनों नस्लों के लोग मिलकर इस देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए काम करें और अमेरिका विश्व में एक महान देश बनकर उभरे।''[1]

उपर्युक्त लिंकन के भाषण से बुद्धिजीवियों को लगा कि यह सुलझा हुआ व्यक्ति ही अमेरिका का राष्ट्रपति बनने योग्य है। लिंकन सरल इंसान थे। राजनीतिक दावं-पेच से अलग थे, इसलिए वे राष्ट्रपति पद के लिए अपने को योग्य नहीं समझते थे।

25. लिंकन राष्ट्रपति बने

लिंकन ने अंततः राष्ट्रपति पद के लिए अपना नामांकन भर दिया। विपक्ष में डगलस थे और दो अन्य भी; परंतु लिंकन चुनाव जीत गये।

26. बच्ची का पत्र

लिंकन जब चुनाव-प्रचार में थे तब उन्हें सुनने के लिए अपने भाइयों के साथ एक नन्हीं बच्ची ग्रेस बीडिल आयी थी। उसने देखा लिंकन दुबले-पतले हैं। उनके गाल पिचके हैं। उसको उनका चेहरा सुंदर नहीं लगा। उसने घर जाकर लिंकन को पत्र लिखा—

''मेरे चार भाई हैं। उनमें से दो आपको वोट देना चाहते हैं और दो किसी और को। यदि आप यह वादा करें कि मेरा पत्र पाते ही आप अपने चेहरे पर दाढ़ी और मूंछें बढ़ा लेंगे तो मैं वादा करती हूं कि मैं अपने उन दोनों भाइयों को भी मना लूंगी और चारों भाइयों से आपको वोट दिलाऊंगी, फिर आप जरूर जीतेंगे। देख लेना तब आपका चेहरा बहुत सुंदर लगेगा। जब आप अमेरिका के राष्ट्रपति बनेंगे तब मैं आपसे मिलने आऊंगी और देखूंगी कि आपने मेरी बात मानी कि नहीं। मेरे अच्छे राष्ट्रपति! वादा करो, आप दाढ़ी-मूंछें बढ़ाओगे और मुझे अवश्य बुलाओगे। आपकी छोटी-सी बेटी—

—ग्रेस बीडिल[2]

---

1. वही, पृ० 77।
2. वही, पृ० 81-82।

अब्राहम लिंकन उक्त पत्र पढ़कर भावविभोर हो गये और उत्तर लिखा—

''मेरी नन्ही-सी बेटी ग्रेस! मैंने तुम्हारा कहना मानकर आज से ही अपनी दाढ़ी बढ़ानी शुरू कर दी है, परंतु मुझे अफसोस है कि तुम्हारी दूसरी मांग पूरी नहीं कर पा रहा हूं। मैं मूंछें नहीं बढ़ा पाऊंगा; क्योंकि मूंछें बढ़ाने से मेरी पहचान बदल जायेगी। फिर मेरे दोस्त भी मुझे नहीं पहचान पायेंगे। मैं वादा करता हूं कि राष्ट्रपति बना तब भी, और न बना तब भी, मैं तुमसे मिलने जरूर आऊंगा। फिर तुम देख लेना मेरा पतला और पिचके गालों वाला चेहरा दाढ़ी बढ़ाने से कैसा लग रहा है।''[1]

ग्रेस बीडिल नाम की छोटी बच्ची ने अब्राहम लिंकन को इतना प्रभावित किया कि उसके कहने से वे दाढ़ी बढ़ाये और दाढ़ी वाले वे पहला राष्ट्रपति हुए और चुनाव-प्रचार में व्यस्त होने पर भी वे उस बच्ची से मिलने आये।

27. साझे वकालत का साइनबोर्ड

लिंकन अब राष्ट्रपति हो गये थे। अब वे स्प्रिंगफील्ड से वाशिंगटन ह्वाइट हाउस में रहने के लिए जाने की तैयारी कर रहे थे। पूरा माहौल गद्‌गद था कि हमारे घर-नगर का आदमी राष्ट्रपति बनकर ह्वाइट हाउस जा रहा है। जिनके साझे में लिंकन वकालत कर रहे थे वे थे हेंडरसन। लिंकन ने उनसे कहा कि हमारे-आपके साझे के व्यवसाय का साइनबोर्ड लटका है जिस पर लिखा है—'ला फार्म ऑफ लिंकन एण्ड हेंडरसन।' इसे आप लटका रहने दें जिससे लोगों को लगे कि लिंकन की साझेदारी अभी भी हेंडरसन से है और अपना कार्यकाल ह्वाइट हाउस में बिताकर यदि जीवन रहा तो पुनः तुम्हारे साथ आकर वकालत करूंगा। हेंडरसन ने कहा कि मुझे गर्व है कि मेरा मित्र राष्ट्रपति हुआ, परंतु तुम यह दिल दुखाने वाली बात क्यों कहते हो कि यदि जीवन रहा तो।

लिंकन ने कहा—हेंडरसन! ध्यान दें। आज जैसा देश का उत्तेजक माहौल किसी राष्ट्रपति के समय नहीं था। दक्षिण राज्यों में विद्रोह का स्वर उठ रहा है। गुलाम-प्रथा को लेकर देश का वातावरण गृहयुद्ध का हो गया है। मुझे अच्छी स्थिति नहीं दिखती है। हेंडरसन ने कहा—हम सबकी आपके लिए मंगलकामना है। आप साधारण आदमी नहीं हैं।

28. अब्राहम लिंकन राष्ट्रपति

अब्राहम लिंकन ने चार (4) मार्च 1861 ई० को राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण किया। वे संयुक्त राज्य अमेरिका के सोलहवें राष्ट्रपति बने। जब अब्राहम लिंकन के राष्ट्रपति होने की संभावना बढ़ गयी थी, तभी दक्षिण राज्यों के गोरे

---

1. वही, पृ० 81-82।

यह मन बना लिए थे कि हमें अपने दक्षिण के राज्यों को अमेरिका संघ से सर्वथा अलग कर लेना है। दक्षिण के गोरे समझते थे कि उत्तरी अमेरिका के लोग गुलाम-प्रथा के कट्टर विरोधी हो गये हैं। अतएव उनके साथ रहना अब संभव नहीं है।

29. दक्षिणी राज्यों का अलग होना

अमेरिका के कई दक्षिण राज्य अलग होकर उन्होंने अंतरिम सरकार का गठन कर लिया और 'कांफेडरेट स्टेट्स ऑफ अमेरिका' नाम से नया संघ बना लिया।

लिंकन के सामने भयंकर समस्या आ गयी। नेता पूछते थे कि ये अलग हुए राज्य अमेरिका संघीय कानून लागू करेंगे कि नहीं। लिंकन चुप। यदि संघीय कानून लागू करते हैं तो दक्षिण के ग्यारह राज्य और उत्तर के तेईस राज्य बंटकर अलग हो जायेंगे और युद्ध की स्थिति बनेगी; और यदि लागू नहीं करते हैं तो मानो दक्षिण के नये संघ की स्वीकृति देते हैं।

30. गृहयुद्ध की स्थिति

लिंकन नहीं चाहते थे कि गृहयुद्ध हो। परंतु दक्षिण वाले अमेरिका संघ में मिलने के लिए राजी नहीं थे। लिंकन समझते थे कि दक्षिण तथा उत्तर के सभी लोग मेरे भाई हैं। परंतु स्थिति आ गयी थी कि युद्ध के अलावा कोई रास्ता नहीं। अतएव लिंकन ने सेना के जनरलों को बुलाकर दक्षिणी राज्यों पर हमला करने की आज्ञा दे दी।

लिंकन ने राष्ट्रपति-पद की शपथ ली और गृहयुद्ध की आग में अमेरिका के जलने की तीव्र संभावना उभरी। इससे वे घबराये हुए थे। राष्ट्रपति के रूप में जब वे अपना पहला भाषण देने के लिए मंच पर चढ़े, तब उनका चित्त अस्त-व्यस्त था। वे एक हाथ में छड़ी और दूसरे हाथ में हैट पकड़े थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि इनको क्या करें। उनके विरोधी समकक्ष नेता डगलस उनके भ्रांत चित्त को समझ गये और सहृदयता से मंच पर चढ़कर उनके हाथों से छड़ी और हैट ले लिए। पीछे उन्होंने उनको वापस कर दिया।

लिंकन ने जनरल स्टॉक को बुलाकर कहा कि तुम जनरलों को बुलाकर युद्ध के लिए हमला करने का आर्डर दो। अमेरिका संघ की सेना के सबसे योग्य जनरल 'ली' को आर्डर दो कि वह सेना लेकर 'रिचमोंड' पर हमला करें। स्कॉट ने ली को बुलाया और हमला करने की आज्ञा दी। परन्तु उसने कुछ सोचने का अवसर मांगा और जल्द ही अपने सबसे श्रेष्ठ सफेद घोड़े पर बैठकर दक्षिण जंगल को निकल गया और विरोधी दक्षिण संघ की सेना में मिल गया और उसकी सेना के बड़े अफसर की हैसियत से अमेरिका संघ के

विरोध में खड़ा हो गया। इस प्रकार 'ली' विरोधी सेना का नायक बन गया। उसने कहा—मैं दक्षिण के विरोध में युद्ध नहीं कर सकता, यह मेरी विवशता है। अतएव मैंने निर्णय लिया कि क्यों न मैं दक्षिण की ओर से लड़ूं।

यह युद्ध सन 1861 से 1864 ई० तक चला और इसमें दोनों पक्ष के लाखों सैनिक मरे और ली की रणकुशलता के कारण दक्षिण पर शीघ्र विजय करना कठिन हो गया। इस बीच अनेक जनरल बदले गये। बहुत से सैनिक अफसर धोखा दिये और बहुत अफसर कुशलता से लड़ते रहे। इन चार वर्षों में लिंकन चैन की सांस नहीं ले सके।

इसी बीच लिंकन का एक प्यारा पुत्र 'विली' बीमार हुआ और मर गया। इससे दोनों प्राणी बहुत आहत हुए। मैरी टॉड तो कुछ दिन के लिए अर्धविक्षिप्त जैसी रहने लगी। लिंकन को उसे खिलाना और सुलाना पड़ता था। जब लड़का मरा, मैरी टॉड पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। लिंकन उसे उठा न सके, अन्यों ने उठाया। लिंकन से आर्डर लेने के लिए सेना के जनरल खड़े थे। युद्ध जोर पर था। लिंकन जनरल से बात करने लगे।

युद्ध के दौरान लिंकन को पांच लाख नये सैनिक भर्ती करने पड़े। बीच-बीच में हजारों नये सैनिक भर्ती किये गये। युद्ध मैदान में समय-समय हजारों लाशें पड़ी दिखती थीं और रक्त नहायी हुई धरती।

31. पत्नी के कारण सदन में लज्जित

लिंकन की पत्नी मैरी टॉड के नैहर के लोग अमीर घरानों के थे और उनमें कुछ उत्तरी अमेरिका और कुछ दक्षिणी अमेरिका में थे और वे उन दोनों विरोधी पक्षों के पक्षधर भी थे। मैरी टॉड के तीन भाई दक्षिणी अमेरिका की ओर से लड़ते हुए उत्तरी अमेरिका की सेना द्वारा मारे गये थे। मैरी के कुछ रिश्तेदार वाशिंगटन के थे जो उत्तरी अमेरिका की ओर से लड़ रहे थे। यह अमेरिका का गृहयुद्ध भारत के महाभारत युद्ध की तरह था जिसमें परिवार और देश के लोग ही मार और मर रहे थे।

लिंकन की पत्नी के परिवार तथा रिश्तेदारों को लेकर उस समय यह कहावत थी कि दो तिहाई गुलाम-प्रथा-विरोधी और एक तिहाई गुलाम-प्रथा-समर्थक हैं।

लिंकन गृहयुद्ध में फंसे थे और वे उसी समय अपनी पत्नी मैरी टॉड के अपव्यय के कारण बदनाम हो रहे थे। इसको लेकर लिंकन के अनेक शत्रु खड़े हो गये। कांग्रेस ने राष्ट्रपति भवन ह्वाइट हाउस को सजाने के लिए बीस हजार डॉलर स्वीकारा था, परंतु लिंकन की पत्नी मैरी टॉड ने उस पर सत्ताइस हजार खर्च कर डाला था। उन्होंने अपने लिए बहुमूल्यवान कपड़े और आभूषण

के लिए बड़ी रकम खर्च कर डाली। एक तरफ गृहयुद्ध की विभीषिका में लाखों लाशें जमीन पर बिछ गयी थीं, दूसरी तरफ मैरी टॉड को अपना शौक पूरा करने की सनक सवार हो गयी थी। वे राजभवन में महारानी की तरह रहना चाहती थीं। वे अपने बच्चों तथा नौकरों-चाकरों पर खुलकर खर्च कर रही थीं और इससे उनमें प्रशंसित भी थीं। परंतु सदन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा था। ''श्रीमती लिंकन के विरुद्ध सीनेट कमेटी गठित हो गयी। यह शर्म की बात थी कि लिंकन को अपनी पत्नी की फिजूलखर्ची के कारण सीनेट कमेटी के सामने उपस्थित होना पड़ा। श्रीमती लिंकन पर यह भी आरोप था कि उनकी सहानुभूति दक्षिण के विद्रोहियों के साथ है। लिंकन केवल तीन मिनट पत्नी के विरुद्ध लगे आरोपों पर बोले और उसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि कमेटी ने उनकी पत्नी के विरुद्ध लगे आरोप वापस ले लिये।''[1]

32. विनोदप्रियता और सहृदयता

लिंकन और उनकी पत्नी 1862 ई० में ह्वाइट हाउस में कुछ विशेष लोगों के स्वागत में थे। लिंकन की पत्नी बहुत कीमती और सुंदर परिधान में थीं और वे बहुत सुंदर लग रही थीं। लिंकन ने अपने पास में बैठी महिला से कहा— My wife is as handsome as she was a girl, and I, a poor nobody then, fell in love with her, and what is more, I have never fallen out.[2] अर्थात मेरी पत्नी अभी भी उतनी ही सुंदर है जितना वह अपनी युवावस्था में थी। उन दिनों मैं एक दीन-गरीब था और उससे प्रेम कर बैठा, और खास तो यह है कि मैं आज भी उससे अलग नहीं हो सका।

लिंकन की उक्त बातें सुनकर सब हंसने लगे और श्रीमती लिंकन लजा गयीं। अब्राहम लिंकन विनोदप्रिय थे। वह गंभीर स्थिति में भी सबको हंसा देते थे।

एक बार एक व्यक्ति लिंकन से मिलने आया। श्रीमती लिंकन भी पास में बैठी थीं। वे बीच-बीच में बोल पड़ती थीं। यह बात आगंतुक को बुरी लगती थी। जब श्रीमती लिंकन वहां से चली गयीं, तब आगंतुक ने लिंकन से पूछा, ''साहेब! यह कौन महिला है?'' लिंकन ने कहा, ''अरे भाई! श्रीमती लिंकन हैं।'' आगंतुक ने कहा, ''क्षमा कीजिएगा।''

लिंकन ने कहा, 'क्षमा मुझे मांगना चाहिए, आप क्यों क्षमा मांगते हैं?''

एक बार एक छात्र ने लिंकन से कहा, ''साहब! आप मुझे बीस डॉलर का सहयोग कर दें, तो मेरी इस वर्ष की पढ़ाई पूरी हो जाये।'' लिंकन ने कहा,

---

1. वही, पृ० 95।
2. वही, पृ० 96।

''जब मैं अपनी पत्नी के साथ बैठा रहूं, उस समय सामने आना और चालीस डॉलर मांगना।'' वह लड़का दोनों की उपस्थिति में आया और उसने लिंकन से चालीस डॉलर की याचना की। लिंकन ने पत्नी से कहा, ''यह लड़का अपनी पढ़ाई के सहयोग में चालीस डॉलर मांग रहा है।'' श्रीमती लिंकन ने कहा, ''बीस डॉलर देना काफी है।'' छात्र का काम बन गया।

33. ब्रिटेन नाराज

राष्ट्रपति लिंकन ने दक्षिणी विद्रोही राज्यों को सेना से घेर लिया और उसके समुद्र के रास्ते भी इसलिए घेर लिया कि उनका विदेश से व्यापार रुक जाये और वे आर्थिक संकट से ऊबकर शीघ्र आत्मसमर्पण कर दें। इससे यह हुआ कि दक्षिणी अमेरिकी राज्यों से ब्रिटेन कपास जाना बंद हो गया, अतएव ब्रिटेन की मिलें बंद हो गयीं और ब्रिटेन-सरकार ने लिंकन पर क्रुद्ध होकर दक्षिणी विद्रोही राज्यों के अंतरिम सरकार कंफेडरेट को मान्यता दे दी। इतना ही नहीं, विद्रोही दक्षिणी राज्य को उसने सैनिक सहायता भी देना शुरू कर दी। इससे विद्रोहियों की हिम्मत बढ़ गयी। उसने उत्तरी अमेरिका के अनेक जल-जहाज समुद्र में डुबो दिये। लिंकन इस संभावना से कंपित हो गये कि विदेशी ताकतें विद्रोहियों की तरफ से यदि युद्ध में उतर आयीं तो अमेरिका राख का ढेर हो जायेगा। इधर अमेरिका की सेना एक वर्ष तक विद्रोही 'ली' को पीछे नहीं धकेल सकी।

34. घमासान युद्ध और विजय

जो जनरल सेना के साथ भेजा जाता वह विद्रोही सेना के जनरल ली का सामना करने से कतराता था अथवा सामना करता तो हार जाता था। घमासान युद्ध चलता था और हजारों लाशें गिरती थीं। लिंकन ने नीग्रो को भी अपनी सेना में भरती किया। युद्ध समाप्ति के बाद संघीय सेना में एक लाख छियासी हजार नीग्रो सैनिक थे।

अंततः विरोधी पक्ष का अजेय जनरल 'ली' पराजित हुआ और उसने आत्मसमर्पण कर दिया। ''घमासान युद्ध के बाद संघीय सेनाओं ने पूरे क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। पर इस युद्ध में इतनी लाशें गिरीं कि दूर-दूर तक जहां तक नजर जाती थी, मैदान में लाशें ही नजर आती थीं। सितम्बर 1863 ई० में गैटिस्वर्ग पर कब्जा हुआ। परंतु लाशें अक्टूबर तक ठिकाने न लगायी जा सकीं। संघीय सैनिकों की लाशों को अक्टूबर के अंत तक दफन करने का काम शुरू किया, परंतु कंफेडरेट सैनिकों की लाशें यूं ही पड़ी रहीं। वर्षों के लंबे अंतराल के बाद भी उन्हें दफनाने का काम शुरू नहीं हो सका। पेंसिलवानिया में सत्तरह एकड़ जमीन संघीय सैनिकों के दफनाने के लिए तय

की गयी थी।''[1]

विजय के उपलक्ष्य में राष्ट्रपति लिंकन को भाषण के लिए बुलाया गया। लोग समझते थे कि विजय के उत्साह में हर्षित होकर भाषण देंगे। परंतु उन्होंने कहा—''हमारे सामने हजारों बहादुरों की लाशें पड़ी हैं। आओ, हम सब अमेरिकावासी मिलकर संकल्प लें कि दोनों ओर से इस गृहयुद्ध में मारे गये लाखों लोगों का बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा। ईश्वर की छत्रछाया में यह राष्ट्र नया जन्म लेगा। उसकी स्वाधीनता नयी होगी, और जनता का जनता पर तथा जनता द्वारा शासन का धरती से कभी अंत नहीं होगा।''[2]

35. अब्राहम लिंकन पुनः राष्ट्रपति

8 नवम्बर, 1864 ई० में अब्राहम लिंकन पुनः राष्ट्रपति हुए। 31 जनवरी, 1865 ई० को लिंकन ने राष्ट्रपति पद की शपथ ली और उन्होंने पहला काम यह किया कि संविधान में संशोधन कर गुलाम-प्रथा का अंत कर दिया। इसको लेकर गुलाम-प्रथा विरोधियों में उनका जय-जयकार हुआ। सदन में खुशी की तालियों की जोर से गड़गड़ाहट हुई।

गुलाम-प्रथा समाप्त करने के बाद लिंकन ने देश को सम्हालने में अपना मन लगा दिया। उनके प्रेमियों ने उन्हें सावधान किया कि गुलाम-प्रथा-समर्थक लोग आपकी जान के लिए खतरा हैं। आप अपनी सुरक्षा बढ़ा दें। परंतु लिंकन ने पीछे आने वाले महात्मा गांधी जैसे वचन कहे—''जब मेरा पूरा देश घायल पड़ा कराह रहा है, जब अमेरिकी अमेरिकी का खून बहाने पर विवश हैं, ऐसे में मैं अपनी जान की हिफाजत करने में लग जाऊं, यह घोर कायरता होगी और सच्चाई से पलायन भी। मैंने जो किया है, अमेरिका के हित में किया है, मानवता के हित में किया है। अब यदि कुछ लोग यह मानते हैं कि मैं गलत हूं, तो उनके हाथ खुले हैं। इस देश के नागरिक होने के नाते वे अपने राष्ट्रपति को जो चाहें सजा दे सकते हैं। राष्ट्रपति को इससे इंकार नहीं है।''[3]

लिंकन को तो युद्ध में मारे गये दोनों पक्षों के लाखों जवानों की विधवाओं और बच्चों की रक्षा, सेवा तथा पूरे अमेरिका के संघीय राज्य की सुव्यवस्था की चिंता थी। लिंकन दक्षिण सेनाओं के कमांडर इन चीफ जनरल 'ली' तथा अन्य जनरलों से मिले। उनको सांत्वना दी। लिंकन के मन में इनके प्रति थोड़ा भी द्वेष नहीं था। उन्होंने उन सबको क्षमाकर उनको साथ में ले लिया।

---

1. वही, पृ० 101।
2. वही, पृ० 101।
3. वही, पृ० 106।

लिंकन ने 'ली' से कहा—"Frighten the hatred and revenge out of country. Enough blood has been shed. Open the gates, let down the bars, scare them off."[1] घृणा और बदले की भावना को देश से हटाओ। बहुत रक्तपात हो चुका है। अब दिल के दरवाजे खोलो, मन को ग्रंथियों से रहित करो।

लिंकन अपनी पत्नी के साथ रथ पर बैठकर घूमने निकले और उन्होंने उनसे कहा कि मेरे चार वर्ष राष्ट्रपति-पद के बीत गये और वे युद्धकाल में गये। इसी बीच मेरा बेटा बिली मुझे छोड़ गया। अब लगता है कि भविष्य ठीक रहेगा। अमेरिका संघ को मजबूत बनाना है। उसकी सेवा करनी है। जब वे घूमकर ह्वाइट हाउस आये तो वे प्रसन्न थे।

36. अंतिम दिन

14 अप्रैल, 1865 का दिन था। लिंकन ने सोचा कि वर्षों से युद्ध की पीड़ा ढोते-ढोते मन भारी हो गया है। थियेटर में 'America Cousin' नामक नाटक चल रहा था। वहां चलकर उसे देखें और मन हलका करें। वे अपनी पत्नी मैरी टॉड और मित्रों के साथ रथ पर बैठकर थियेटर गये। वहां उन्हें एक विशेष स्थान पर बैठाया गया।

'जॉन विल्कस बूथ' नाम का एक युवक था। वह गुलाम-प्रथा का समर्थक था। वह अब्राहम लिंकन की जान का प्यासा था। उसने जान लिया था कि अब्राहम लिंकन नाटक देख रहे हैं और उनके पास न कोई अंगरक्षक है और न हथियार। उसे यह अवसर अपने काम के लिए उत्तम लगा। वह दाहिने हाथ में पिस्तौल और बायें हाथ में खंजर लेकर पीछे से आया और लिंकन के सिर में गोली मार दी। उनके दिमाग में गोली घुस गयी। वे आगे की ओर गिर पड़े। लिंकन के मित्र हत्यारे पर झपटे परंतु वह उन्हें खंजर से घायल कर भाग निकला। भागते समय वह गिरा और उसका पैर टूट गया, फिर भी वह भाग निकला। पीछे पकड़ा गया।

मैरी टॉड के रुदन से पूरा थियेटर गूंज गया। भगदड़ मच गयी। लिंकन का खून फर्श पर बह रहा था। डॉक्टरों ने बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु अपने राष्ट्रपति को बचा न सके।

राष्ट्रपति लिंकन की मृत्यु से पूरा अमेरिका दहल गया। लाखों नर-नारी फूट-फूटकर रो पड़े। सैनिक, प्रजा सब बहुत पीड़ित हुए। सर्वाधिक रोये दक्षिण राज्यों के चालीस लाख नीग्रो जिनको गुलामी से मुक्ति दिलाने में उनका रक्त बहा।

---

1. वही, पृ० 107।

लिंकन का परिवार तो बेहाल हो गया। मैरी टॉड अपने तीनों पुत्रों को सीने से लगाकर रोती, विक्षिप्तों की तरह चीखती और अचेत हो जाती।

लिंकन की शव-यात्रा निकली, जिसमें चालीस लाख आंसू बहाते लोग थे। वाशिंगटन से शव स्प्रिंगफील्ड लाया गया। जुलूस उसके पीछे चला। जो रास्ते में मिलता वही जुलूस के साथ चलता और जहां तक चल पाता चलता। स्प्रिंगफील्ड जहां लिंकन का अपना घर था, वहां उनके शव को दफनाया गया।

लिंकन के साथी वकील हेंडरसन ने अपने आफिस पर लगे उस बोर्ड को देखकर जिस पर लिखा था—'लॉ फार्म ऑफ लिंकन एण्ड हेंडरसन।' कहा—''तू मुझे धोखा दे गया न! तू तो कहता था, राष्ट्रपति काल पूरा करके फिर स्प्रिंगफील्ड आयेगा और मेरे साथ फिर वकालत करेगा। इसी दशा में यह बोर्ड तेरे कहे अनुसार मैंने नहीं हटाया। अब तू स्प्रिंगफील्ड आया भी है तो इस हालत में.....मेरे राष्ट्रपति मेरे दोस्त। बता अब मैं क्या करूं? क्या अब भी यह बोर्ड यूं ही लगा रहने दूं या इसे उखाड़ फेंकू।'' कहते-कहते हेंडरसन रो पड़े।''[1]

''पति की मृत्यु के बाद मैरी लिंकन अपने बेटों के साथ अपने घर में न रह सकीं। वे अपनी बहन के साथ उन्हीं के घर में आ गयीं। जिस पलंग पर मैरी लिंकन अपने राष्ट्रपति पति के साथ सोया करती थीं, उसे वे अपने साथ ले आयी थीं। अपनी बहन के घर के एक कमरे में उन्होंने वह पलंग डलवाया था। वे बिलकुल चुप रहती थीं। रात को जब सोतीं तो पलंग की वह जगह खाली छोड़ देती थीं जिस पर राष्ट्रपति लिंकन सोया करते थे।''[2]

श्रीमती लिंकन मैरी टॉड अमीर घर की लड़की थीं। ठाट-बाट, शान-शौकत से रहने वाली थीं। उनकी विशेषता थी कि उन्होंने एक अस्त-व्यस्त, किंतु मानवता के प्रेमी प्रतिभावान पुरुष अब्राहम लिंकन को पति के रूप में वरण किया, और उनके त्यागमय जीवन से अपना सामंजस्य बैठाया। यह उनकी विशेषता थी। किंतु उनके ठाट-बाट, ऐश्वर्य और लौकिक उपलब्धियों का परिणाम क्या रहा? राष्ट्रपति पति को काल ने निर्दयतापूर्वक उनके सामने छीन लिया। वे अपने पुत्रों के साथ न रह सकीं। सबसे छोटा प्यारा पुत्र पहले ही दुनिया से चला गया; और वे अकिंचन होकर एक कमरे में मौन भाव से रहने लगीं। संतों का अनुभव और उपदेश ही सच्चाई है। सबको दीनता, अल्पता और अकेलापन में पहुंचना है चाहे वह सम्राट ही क्यों न हो। वह धन्य है जो ज्ञानपूर्वक स्वेच्छा से इन्हें स्वीकार लेता है। जो थोड़े में गुजर, विनम्र और अपनी असंगता एवं अकेलेपन में तृप्त हो जाता है, वह कृतार्थ हो जाता

---

1. **वही, पृ० 111।**
2. **वही, पृ० 111।**

है। अतएव कबीर साहेब की यह वाणी याद रखना चाहिए—

एक दिन ऐसा आयेगा, कोइ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहे, तन की नारी जाहिं॥

लिंकन के निधन के चार वर्ष बाद भारत में महात्मा गांधी का जन्म होता है। मानो लिंकन ही महात्मा गांधी बनकर भारत में आ गये हैं अधिक उन्नत होकर।

37. लिंकन-अभियान की अनुपूर्ति

आप ऊपर पढ़ आये हैं कि जब अब्राहम लिंकन दोबारा राष्ट्रपति हुए, उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में संशोधन कर गुलाम-प्रथा को बंद करवा दिया और उसके बाद ही उनका जीवन नहीं रहा।

अमेरिका में रहने वाले अश्वेतों को गुलामी से तो छुट्टी मिल गयी, परंतु वे गोरों के मोहल्लों में नहीं रह सकते थे, बस तथा ट्रेन में गोरों के साथ नहीं बैठ सकते थे। अश्वेतों के लिए बस में पीछे चिह्नित सीटें होती थीं। यदि दस सीटें हैं और पंद्रह अश्वेत आ गये, तो उसी में ठसकर चलें। आगे गोरों वाली सीटें चाहे खाली हों, अश्वेत नहीं बैठ सकते थे। इसी तरह ट्रेन-यात्रा की भी बात थी। पाठकों को स्मरण होना चाहिए कि इन्हीं गोरों ने अफ्रीका में ट्रेन-यात्रा में गांधी जी को ट्रेन की प्रथम श्रेणी के डिब्बे से उतर जाने के लिए कहा था। तब गांधी जी ने प्रथम श्रेणी का टिकट दिखाया। गोरों ने डांटा। तब भी जब गांधी जी नहीं हटे तब उन्हें डिब्बे से बाहर फेंक दिया गया। अमेरिका में अश्वेत लोग चुनाव में वोट नहीं दे सकते थे। कुल मिलाकर यही था कि अब्राहम लिंकन के प्रयास से अमेरिका के अश्वेतों को गुलामी से छुट्टी मिल गयी थी। अब उन्हें गोरे बेच-खरीद नहीं सकते थे, वे किसी की संपत्ति नहीं थे, और स्वतन्त्रता से मेहनत-मजदूरी करके खा-जी सकते थे। परंतु उन्हें अमेरिका के गोरों के समान सामाजिक और राष्ट्रीय अधिकार नहीं थे। यह विषमता की त्रासदी अश्वेतों ने लगभग सौ वर्षों तक झेला।

38. नयी क्रांति

सन् 1955 ई० की बात है। पंद्रह वर्ष की एक अश्वेत छात्रा बस पर उस तरफ बैठी जहां उसका अधिकार नहीं था। गोरों ने उसे उठने की बात कही, परंतु वह नहीं उठी। इससे गोरों को लगा कि ये अश्वेत ढीठ हो रहे हैं। यह चर्चा का विषय बना। आयी-गयी बात खत्म हो गयी।

39. रोजा पार्क की वीरता

सन् 1955 ई० की ही बात है। रोजा पार्क नाम की अश्वेत महिला बस में उस सीट पर बैठी जिस पर गोरों के अनुसार अश्वेतों को बैठने का अधिकार

नहीं था। गोरों ने उसे उठने के लिए कहा, किंतु वह नहीं उठी। परिणामत: रोजा पार्क गिरफ्तार कर जेल में डाल दी गयी।

40. मार्टिन लूथर किंग जूनियर की क्रांति

अमेरिका के जार्जिया प्रदेश के अटलांटा शहर में रहने वाले अश्वेतों में एक सज्जन थे, उनका नाम था माइकल किंग। उनको 15 जनवरी सन् 1929 ई० में पुत्र पैदा हुआ। उन्होंने उसका नाम रखा माइकल किंग जूनियर। पिता अपने पांच वर्ष के बच्चे को लेकर जर्मनी की यात्रा में गये जहां पर पंद्रहवीं ई० में प्रसिद्ध मार्टिन लूथर हुए थे। जिन्होंने इसाइयत में एक क्रांति लायी थी और उन्होंने इसाइयत में अनेक संशोधन किया था। इसके साथ इसाइयत में एक प्रोटेस्टेंट संप्रदाय ही निकल पड़ा।

माइकल किंग मार्टिन लूथर की क्रांति को समझकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपना नाम 'माइकल किंग' से बदलकर 'मार्टिन लूथर किंग' और अपने पुत्र 'माइकल किंग जूनियर' का नाम बदलकर 'मार्टिन लूथर किंग जूनियर' रखा।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर के शिक्षा गुरु थे 'हर्वर्ड थुरमन' जो भारत के महात्मा गांधी से अत्यन्त प्रभावित थे। गांधी जी के अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन जो भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध चले थे अपने गुरु हर्वर्ड थुरमन से उसका प्रभाव लेकर मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अमेरिका के अश्वेतों को समान अधिकार दिलाने के लिए अहिंसात्मक अभियान चलाया। साथ-साथ वे अब्राहम लिंकन के मानवतावादी सफल अभियान से प्रभावित थे ही।

रोजा पार्क के बस से न उठने से जब उसे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया, तब किंग ने उसके काम को स्वयं ले लिया। अश्वेतों को समान अधिकार दिलाने के लिए किंग का एक अच्छा संगठन था। उन्होंने इस संगठन के सहयोग से अश्वेतों के लिए यह आदेश निकाला कि वे बस का बहिष्कार करें। अश्वेतों ने बस पर बैठना बन्द कर दिया। पूरे अमेरिका में यह बात मीडिया द्वारा छायी रही।

किंग को भी जेल में डाल दिया गया। उनके घर में गोरों ने बम गिराया। अन्तत: जेल में बंद लोगों को सरकार ने छोड़ दिया। तीन सौ पच्चासी (385) दिनों के बस-बहिष्कार अभियान के बाद आन्दोलन स्थल 'मोन्टगुमरी' नाम के शहर में अश्वेतों को बस में बैठने का समान अधिकार मिला।

1963 ई० में वाशिंगटन स्थित अब्राहम लिंकन मेमोरियल के मैदान में मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने 'मेरा एक स्वप्न' नाम से ऐतिहासिक भाषण दिया, जिसमें ढाई लाख लोग इकट्ठे थे जो सर्वाधिक ऐतिहासिक भीड़ थी।

इसका अमेरिका पर व्यापक प्रभाव पड़ा। फिर देश में उनके भाषण होते रहे। उनका पूरा अभियान गांधीवादी ढंग से अहिंसात्मक था। अन्ततः अश्वेतों को सन् 1964 ई० में समान नागरिक अधिकार मिला, और सन् 1965 ई० में मतदान करने का अधिकार मिला।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर सन् 1959 में भारत आये थे और महात्मा गांधी जी के जन्म-स्थल तथा कार्यस्थल देखे और गांधी जी के परिवार से मिले। वे गांधी जी से अत्यन्त प्रभावित थे।

41. अंततः पूर्ण विजय

एक बार टेनिसी नामक शहर में सफाई कर्मचारियों को सफाई में लगाया गया। उनमें श्वेत-अश्वेत दोनों प्रकार के लोग थे। दो घंटे काम करने के बाद मौसम खराब हो गया, इसलिए कर्मचारियों को छुट्टी दे दी गयी। अश्वेतों को केवल दो घंटे की मजदूरी दी गयी और श्वेतों को पूरे दिन की मजदूरी दी गयी। इस बात को लेकर अश्वेतों ने हड़ताल किया।

उपर्युक्त हड़ताल में अश्वेतों के अधिकार दिलाने को लेकर 29 मार्च, 1968 ई० में मार्टिन लूथर किंग जूनियर टेनिसी शहर गये। इसी दौरान जब वे एक होटल की बालकनी में खड़े थे, उनके ऊपर गोली चलायी गयी और वे एक घंटा में मर गये।

उन्होंने भाषण में कहा था कि मैं भी साधारण आदमी की तरह अपना लंबा जीवन जीकर मरना चाहता हूं। परंतु मुझे आभास है कि मेरे शरीर के लोग ग्राहक हैं। इस बात को लेकर मैं चिंतित नहीं हूं। मैंने जिस काम को किया है उसके सर्वोच्च फल को देखने के लिए मैं भले न रहूं, परंतु साथ के लोग वह काम पूरा करेंगे।

उनका शांतिपूर्वक अहिंसात्मक आन्दोलन अश्वेतों तथा सभी उपेक्षितों के उद्धार के लिए था। इस उच्च काम के लिए उन्हें शांतिदूत मानकर 1964 ई० में नोबेल पुरस्कार मिला था। किंग ने अपने अनुगामियों को कह रखा था कि मेरे मरने के बाद मेरी बड़ाई में नोबेल पुरस्कार की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।

उनकी शव-यात्रा में लाखों लोग सम्मिलित हुए। पूरे अश्वेत और मानवतावादी गोरे भी हृदय से रो दिये।

चारों आंखों के अंधे लोग ईसा, मंसूर, सरमद, गांधी, लिंकन, किंग आदि को कहां समझ पाये? परंतु सत्य की विजय होती है। अब्राहम लिंकन के बलिदान के बाद अमेरिका-निवासी अश्वेतों को समान अधिकार प्राप्त करने में ठीक सौ वर्ष लगे। आज-कल की अमेरिकी उन्नति में नीग्रो लोगों का प्रबल

हाथ है। यहां तक कि खेल में भी वे आगे हैं। अब नीग्रो शब्द भी मानवता विरोधी माना जाता है।

आज संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति 'बराक ओबामा' हैं जो अफ्रीकी मूल के अमेरिकावासी अश्वेत नीग्रो हैं और सैतालीस (47) वर्ष की उम्र के लगभग हैं और प्रबल जनमत से राष्ट्रपति पद पर आये हैं। अमेरिकी इतिहास में बराक ओबामा प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति हैं।

जो स्वप्न जार्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन तथा मार्टिन लूथर किंग जूनियर आदि ने देखा था वह आज पूरा होते दिख रहा है। 2000 ई० से मार्टिन लूथर किंग जूनियर के जन्म दिन 15 जनवरी को पूरे अमेरिका में सरकारी छुट्टी घोषित हुई।